

‘भारतीय आधुनिक शिक्षा’ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोधकर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे-शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएं, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक

राजरानी

अकादमिक संपादकीय समिति

रंजना अरोड़ा योगेश कुमार
किरण वालिया अनुपम आहूजा
एम.वी. श्रीनिवासन सुनीता कुमारी नागर (जे.पी.एफ.)

प्रकाशन विभाग के सदस्य

विभागाध्यक्ष नीरजा शुक्ला
मुख्य संपादक श्वेता उप्पल
सहायक संपादक ओम प्रकाश
उत्पादन सुनील कुमार

आवरण
अमित श्रीवास्तव

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्टेकेरे
बनाशकरी III इस्टेज
बंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति – 50.00 रुपए वार्षिक – 200.00 रुपए

परिषद् की 'भारतीय आधुनिक शिक्षा' एवं 'प्राइमरी शिक्षक' त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उल्लेखित दो त्रैमासिक पत्रिकाएं शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुँचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हो। शैक्षिक उपयोगिता से ये पत्रिकाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषयवस्तु 2500 से 3000 शब्दों में या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। यदि लेखक अपने लेखों के साथ सीडी या फ्लॉपी और स्वयं का ई. मेल का पता भेज सकें तो सुविधा होगी। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें -

विभागाध्यक्ष (पत्रिका प्रकोष्ठ), प्रकाशन विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा द्वारा मुद्रित।

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 31

अंक 3

जनवरी 2011

इस अंक में

संपादकीय		3
समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति	- मेधा पाटकर	5
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्य एवं अध्यात्म शिक्षा की आवश्यकता	- सुरेश्वर मेहेर	26
शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	- सुधीर कुमार शर्मा एवं श्याम सिंह सत्यार्थी	37
प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी—शिक्षक के लिए चुनौती	- अन्विति सिंह	46
दिल्ली में लड़कियों के स्वतंत्र मदरसों का जेंडर परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत एक शोध अध्ययन	- सुषमा जयरथ	52
आकलन की पारम्परिक प्रक्रिया असफल कौन—विद्यार्थी या व्यवस्था?	- एन.सी.ई.आर.टी.	62
भूमिका निर्वाह प्रतिमान द्वारा समानुभूति का विकास	- अर्चना दुबे एवं महेंद्र पाटीदार	68
‘शिक्षा का विकेंद्रीकरण’ पंचायती राज व्यवस्था में शिक्षा का मॉडल	- तिलक राज पंकज	75

प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण	- लक्ष्मी नारायण मित्तल	84
विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा समायोजन का प्रभाव	- भावेश चंद्र दुबे	89
मार्जरी साइक्स शिक्षा-सादगी, सौंदर्य और समानता के लिए	- अनिल सेठी	96
पुस्तक समीक्षा इतिहास की समझ—शिक्षक मार्गदर्शिका संपादक-पवन कुमार गुप्ता	- सीमा एस. ओझा	104

संपादकीय

दिन-प्रतिदिन समाज में शिक्षा का बढ़ता महत्त्व, हमारी स्कूली और विश्वविद्यालयी व्यवस्था से अपनी उम्मीदें भी बढ़ाता जा रहा है। बढ़ती जनसँख्या और शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता ने शैक्षिक संस्थाओं के सामने तमाम चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। एक ओर शिक्षा का अधिकार सभी के लिए शिक्षा के प्रावधान देना है तो दूसरी ओर प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थी को कक्षा में किस तरह सबके समान ही अधिगम अनुभव दिए जाएँ, इसे एक चुनौती के रूप में शिक्षक के सामने रखता है। इस अँक में शामिल सुधीर कुमार शर्मा, श्याम सिंह सत्यार्थी और अंविता सिंह के लेख इन विषयों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर देते प्रतीत होते हैं। शिक्षा और समाज का गहरा नाता है, समाज में आ रहे परिवर्तन या समाज की रूढ़िवादिता एक तरफ तो शिक्षा पर प्रभाव डालती हैं और दूसरी ओर शिक्षा अपना गहरा प्रभाव समाज पर भी छोड़ती है। कुछ ऐसे ही मुद्दों पर चर्चा है मेधा पाटेकर जी के लेख 'समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति' में। इस लेख में लेखिका स्पष्ट तौर पर इंगित करती हैं कि शिक्षा एक व्यापक विषय है और इसे जीवन से अलग करके नहीं बल्कि जीवन पद्धति में

फैली विविधताओं का समावेश कर बहुपयोगी बनाया जा सकता है। इसी कड़ी में जुड़ता सा प्रतीत होता है सुषमा जयरथ द्वारा लिखा शोध लेख 'दिल्ली में लड़कियों के स्वतंत्र मदरसों का जेंडर परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत एक शोध अध्ययन' जिसमें अल्पसँख्यक समूह की लड़कियों को मदरसों में दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता पर बात की गई है। इस अँक में शामिल हैं कुछ अन्य लेख जो प्रगतिशील शैक्षिक विचारों के क्रियान्वयन पर चर्चा करते हैं जैसे तिलक राज पंकज द्वारा लिखित लेख 'शिक्षा का विकेंद्रीकरण', लक्ष्मी नारायण मित्तल का लेख 'प्रथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण'।

शोध किसी भी व्यवस्था का अहम् हिस्सा होता है। शोध प्रक्रियाएँ ही व्यवस्था को पृष्ठपोषण प्रदान करती हैं और व्यवस्था अपनी कमियों को पहचानते हुए, उन्हें दूर करते हुए आगे बढ़ती है। इस अँक में हमने दो और शोध लेख शामिल किए हैं—पहला अर्चना दुबे और महेंद्र पाटीदार द्वारा लिखा लेख 'भूमिका निर्वाह प्रतिमान द्वारा समानुभूति का विकास' तथा दूसरा भावेश चंद्र दुबे का लेख विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणा का प्रभाव।

शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक विचारकों के प्रगतिशील विचारों का सदैव ही बहुत योगदान रहा है। इन विचारों द्वारा न केवल शिक्षकों को मदद मिली शिक्षा को नए नजरिए से समझने की वरन् पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तक बनाने वाले, शोधकर्ता, शैक्षिक प्रशासन सभी ने इन्हें समझने की कोशिश करते हुए शिक्षा को समाजोपयोगी बनाने में अपना योगदान जारी रखा है।

मार्जरी साइक्स-ब्रिटिश मूल की एक शिक्षिका ने शिक्षा संबंधी गतिविधियों में महात्मा गाँधी और रविंद्र नाथ ठाकुर दोनों के शिक्षा संबंधी

विचारों का समावेश किया। उनकी चेष्टा थी—सादगी, सौंदर्य और समानता की ओर ले जाने वाली शिक्षा का प्रवर्तन। इस महान शिक्षिका के शैक्षिक योगदान पर प्रकाश डालता अनिल सेठी द्वारा लिखा लेख भी इस अंक में सम्मिलित है। हम यह प्रयत्न करते हैं कि लेखों के साथ-साथ पाठकों को शिक्षा संबंधी नई किताबों के बारे में भी जानने को मिले। इस बार हम दे रहे हैं सीमा एस. ओझा द्वारा लिखित 'इतिहास की समझ'—शिक्षण मार्गदर्शिका पर एक समीक्षा। नव वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ।

अकादमिक संपादकीय समिति

समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति*

मेधा पाटकर**

भारतीय समाज में शिक्षा, उसकी विषय-वस्तु, विस्तृत उद्देश्य, औपचारिक बनाम अनौपचारिक स्वरूप एवं इससे जुड़े कई अन्य पक्षों पर निरंतर विचार-विमर्श होता रहा है। इस विचार-विमर्श में शिक्षा से जुड़ी औपचारिक पद्धतियों, शिक्षण संस्थाओं के वातावरण, तयशुदा पाठ्यक्रम एवं उनके सीमित प्रभाव वाले आचार-व्यवहार को इस व्यवस्था से इतर लोगों ने अपने विचारों, अनुभवों और सफल व्यावहारिक प्रयोगों से चुनौती दी है। उनका मत है कि शिक्षा एक व्यापक विषय है और इसे जीवन से अलग करके नहीं बल्कि जीवन पद्धति में फैली विविधताओं का समावेश कर बहुपयोगी बनाया जा सकता है। इससे शिक्षा में सहभागिता को भी बढ़ाया जा सकता है। विविधताओं के समावेश से काफ़ी हद तक समता के अधिकार की पूर्ति भी हो सकती है जो कि हमारे संविधान के उद्देश्यों में भी प्रतिध्वनित होती है। शिक्षा में लोकतंत्र के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु गाँव, समाज और राज्य स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए जिससे शिक्षा में 'नवनिर्माण' का आंदोलन शुरू होने तक की संभावना बने। राज्य स्तर के प्रयासों में रह गई कमियों की तरफ़ इशारा करने में भी ये शिक्षाशास्त्री नहीं चूकते। इसके अलावा ये शिक्षा के वैकल्पिक स्वरूप में काम में लगी संस्थाओं के सफल प्रयोगों के अनुकरण की माँग भी करते हैं। वैश्वीकरण के बदलते परिदृश्य में शासन अर्थतंत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। शिक्षा में बाज़ारीकरण की तीव्र घुसपैठ के कई उदाहरण सामने रखते हुए लेखिका ने स्पष्ट किया है कि अब बाज़ारीकरण का अपना छद्म वेश धीरे-धीरे अपने लाभ कमाने के उद्देश्यों को पूरा करता जा रहा है। कई स्थानों पर शासन भी सहायक की भूमिका में सामने आया है। लेखिका का मत है कि बड़ी पूँजी

*प्रस्तुत आलेख मार्जरी साइक्स प्रथम स्मृति व्याख्यान 2008 के अवसर पर सुश्री मेधा पाटकर द्वारा दिये गए संभाषण का लिखित रूप है। यह संभाषण 8 अप्रैल 2008 को क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान अजमेर में दिया गया और इसे एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है

**प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन की संस्थापक

द्वारा यह मात्र एक हस्तक्षेप नहीं बल्कि उनका इस क्षेत्र में प्रवेश, कब्जा और राजनीतिक हस्तक्षेप के उद्देश्यों को समझना अपने आप में एक चुनौती है।

अभिप्राय यह है कि अपने इन उद्देश्यों को पूरा करने हेतु पूँजी हर संभव रास्ते तलाशती है क्योंकि अपने निहित स्वार्थों को पूरा करना ही उसका अंतिम उद्देश्य होता है। लेखिका का मत है कि जीवनोपयोगी शिक्षा की प्राप्ति हेतु सक्रिय सहभागिता हेतु जनशक्ति को भी जुटाना होगा। वहीं दूसरी ओर लेखिका शिक्षा में व्यापक बदलाव की बात करते हुए इस ओर ध्यान दिलाती हैं कि शिक्षा प्रणाली को हर एक तक पहुँचाने के लिए उसमें खुलापन लाना होगा। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा में आधुनिक समाज के बदलते आग्रहों को भी स्वीकार करना ही होगा। मेधा जी ने राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भाव की शिक्षा की विस्तृत रूपरेखा को भी इस आलेख में प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि औपचारिक ही नहीं अनौपचारिक शिक्षा भी लोकतंत्र में विचारों की अभिव्यक्ति का एक अच्छा माध्यम बन सकती है। इसके अतिरिक्त वे सार्थक उद्देश्यों और व्यापक दायरों को जन-जन तक पहुँचाने हेतु किए जा रहे प्रयोगों की ओर भी ध्यान आकर्षित करते हुए लचीलापन अपनाने का आग्रह करती हैं। संचार माध्यमों की सहयोगी भूमिका को रेखांकित करते हुए वे वैकल्पिक माध्यमों को अपनाने पर जोर देती हैं। इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण बात माध्यमों की भाषा की है। कहने का अर्थ यह है कि शिक्षा का परिवेश जीवनदृष्टि पर आधारित शिक्षा को विविधता के समावेश के साथ प्रस्तुत करके ही समाज में लोकतांत्रिक और जनवादी शिक्षा विकसित की जा सकती है। जब तक लोगों को अपनी भाषा में अपनी बात कहने के अवसर प्राप्त नहीं होंगे परिवर्तन को स्वीकारने के आग्रहों में अंतर्विरोध भी खत्म नहीं होंगे। सामाजिक शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती राजनीति की वर्तमान परिस्थितियाँ हैं। लेखिका ने इन सभी चुनौतियों और उनसे जुड़े समाधानों को संक्षेप में इस लेख के अंत में प्रस्तुत किया है।

शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जो केवल पुस्तकों-पाठ्यक्रमों या दीवारों के बीच बंधक बनकर नहीं रह सकती। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अपने मूल्य, आदर्श, नीति और रीति पहुँचाना, अपनी तकनीक और कुशलता का आदान प्रदान करना यदि 'शिक्षा' है तो यह प्रक्रिया आज के प्रत्येक समाज में जारी है। इसका संबंध सिर्फ

औपचारिक संरचना, सरकारी योजना, नीति, नियम और शासकीय सहायता से नहीं होता बल्कि यह समाज के इतिहास और भविष्य से होता है। समाज अपने प्राकृतिक परिवेश एवं सांस्कृतिक धरोहर से संबंधित तथ्यों को शिक्षा के रूप में संग्रहित करता है। समाज जो नए मूल्य, नए प्रतीक, नए रिश्ते या नया जीवनदर्शन आत्मसात

करता है; या फिर बदलाव की चाहत रखता है, वह सब भी शिक्षा में प्रतिबिंबित होता है। इसीलिए शिक्षा के न केवल दायरे बदलते हैं बल्कि उसका मूलभाव भी काफ़ी हद तक बदलता रहता है।

भारत एक राष्ट्र है परंतु भारतीय समाज न केवल विविधताओं से बल्कि कई प्रकार की असमानताओं से परिपूर्ण है। ऐसे में शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से निकला पाठ्यक्रम नहीं हो सकती है। समाज प्रत्येक **कालखंड** में अपनी औपचारिक ही नहीं अनौपचारिक शिक्षा में भी बदलाव लाता रहता है। हर तबके की सोच में बुनियादी फ़र्क रहना स्वाभाविक है और उनके बदलाव की गति भी समान नहीं हो सकती। इस स्थिति में शिक्षा के स्वरूप, पद्धति, संरचना एवं संदेश को लचीला रखना बहुत ही ज़रूरी होता है लेकिन यदि शिक्षा में निहित मूल्यों, शिक्षण पद्धति एवं शिक्षा प्रसार कार्यक्रमों में समानता नहीं होगी तो राष्ट्र की अखंडता और एकात्मकता का आधार ही खतरे में पड़ सकता है। इस दोहरी चुनौती को समझते हुए हमें शिक्षा संबंधी अपनी भूमिका स्पष्ट करनी होगी।

विविधता का आधार—समता का अधिकार

हम सब जो जीने के अधिकार के लिए संघर्षरत हैं, शिक्षा को उसके व्यापक अर्थ में आत्मसात करते हैं। इसी वजह से हम शिक्षा के अधिकार के व्यापक स्वरूप को महत्वपूर्ण मानते हैं। जीवन में शिक्षा की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी रोटी, कपड़ा और मकान की। मानवीय रिश्ते, संवाद और आदान-प्रदान से ही समाज बनता और बिखरता है।

समाज की बनावट और जीवन संबंधी धारणाओं में शिक्षा प्रवाहमान है अतएव समाज और शिक्षा का अटूट संबंध कोई भी समझ सकता है। दुनियाँ की 16% जनसँख्या के इस देश का जात-पातों में, मज़हबों में तथा भाषावार प्रांत जैसी बिखरी इकाइयों में बँधा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसीलिए शिक्षा के अधिकार को इन भिन्नताओं के पार हासिल करना हमारे अनुसार शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। अतएव शिक्षा को सामाजीकरण की पहली कसौटी होनी चाहिए। महात्मा ज्योतिराव फूले ने हंटर कमीशन के वक्त भी 'ब्राह्मणों से बहुजन समाज का शिक्षा के मायने में अलगाव' की बात उजागर की थी। वह ब्रिटिश साम्राज्यकाल था लेकिन 'आरक्षण' के करीबन 6 दशक बीतने के बाद भी जातियों में ही नहीं गाँव और शहर, खेती और उद्योग में भी बँटे हुए हमारे समाज में समान शिक्षा अर्थात् समता की ओर ले जाने वाली शिक्षा की प्राथमिकता न तो हमारे शासनकर्ता और न ही समाज के अधिकाँश लोग समझते हैं। समाज जाति-वर्ग-लिंग के आधार पर अपना दायरा, परिवेश और अपनी आजीविका के ही साथ जुड़कर शिक्षा की अभिलाषा रखता है। इतना ही नहीं वे शिक्षा से विविधताओं का भंडार सुरक्षित रखने और आपसी वैरभाव या भेदभाव की लकीरें मिटाने के कार्य को कम महत्त्व देता है। हमें इससे उभरना है और समाज के हर तबके की शिक्षा की परिभाषा को, शिक्षा के अंतिम उद्देश्य को और उसकी शिक्षा पद्धति को समझना होगा। गृह-उद्योगों पर आश्रित समुदाय अपने बच्चे को मात्र परिवार के साथ ही नहीं बल्कि उसे वंशानुगत व्यवसाय के साथ जोड़कर ही सिखाना चाहेंगे न कि उसे घर से दूर भेजकर शिक्षा दिलवाने

पर सहमत होंगे। खेती प्रधान समाज हो या वनजीवी, उनके बच्चों की सहभागिता केवल अर्थार्जन के लिए नहीं बल्कि ज़मीनी जीवनप्रणाली में उनके हिस्से के नाते विशेष स्थान रखती है। इस बात को समझे बिना इन श्रमजीवी समाजों की अगली पीढ़ी को आधुनिक शिक्षा के दायरे में लाना, यानि बाह्य ज्ञान के साथ शिक्षा की प्रक्रिया उन तक ले जाना, असंभव-सा है। हमारी पहुँच कुछ बढ़ी भी तो बच्चा कब अपना हाथ छुड़वाकर उससे निकलकर बाहर चला जाएगा इस बात का भरोसा नहीं है। यह एक रुचिकर खोज का विषय हो सकता है कि समाज की कोई भी आर्थिक-सामाजिक ईकाई अपने अंदरूनी मतभेद के होते हुए भी शिक्षा का स्वरूप और विषयवस्तु ही नहीं बल्कि उसका जीवन से रिश्ता, किस पद्धति और माध्यम से स्थापित करती है।

मध्यप्रदेश और सतपुड़ा और विंध्य की पहाड़ियों के बीच स्थित आदिवासी गाँवों में नर्मदा नवनिर्माण अभियान एवं नर्मदा बचाओ आंदोलन हमारी 12 जीवनशालाओं की ओर संचालित है। ये वे गाँव हैं जहाँ के निवासी नर्मदा बचाओ “कहते-कहते, गाँव बचाओ, जंगल-ज़मीन बचाओ और देश बचाओ” तक पहुँच गए हैं और आज भी अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा खोकर अपनी अगली पीढ़ी जो उस प्रकार की औपचारिक शिक्षा लेने वाली पहली पीढ़ी है को पूरी ऊर्जा के साथ नयी जिंदगी देने की कोशिश जारी रखे हुए है। भील, भिलाला, राठवा, तडवी जनजाति के ये आदिवासी अभी भी अपने बच्चों को न केवल होली-दीवाली के नृत्य बल्कि पुरातन कहानियों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पूँजी पहुँचाने के लिए सतत

प्रयासरत रहते हैं। ‘गायना’ ऐसा ही एक सुंदर माध्यम है। इसे रातभर इंदल पूजा के साथ चलने वाला ‘खंडकाव्य’ ही समझना चाहिए। इसमें पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर आदिवासी देवी-देवता, राजा-रानी, जीवन पद्धति और अन्न देवता तक की गाथाएँ शामिल होती हैं। इसके द्वारा हर बच्चे-बूढ़े का अपनी धरती, करहण (फ़सल) परंपरा और इतिहास से एक जीवंत रिश्ता बना रहता है। जीवनशालाओं में उसी समाज से निकल कर पढ़े-लिखे शिक्षकों के द्वारा ‘गायना’ में बुनी हुई कई कहानियों की किताब छपवाकर यदि हम उसे पाठ्यक्रम में जोड़ दें तो इस नये माध्यम की ताकत को हम ‘अनौपचारिक’ से ‘औपचारिक’ शिक्षा में ला सकते हैं। सच तो यह है कि अनौपचारिक-औपचारिक का वर्गीकरण भी पूर्णतः सही नहीं है। दोनों शिक्षा के अपने-अपने प्रवाह हैं और कोई बच्चा या व्यक्ति दोनों के समायोजन से ही कुछ सीखता है।

इन आदिवासी बच्चों के पहाड़ी जीवन का प्राकृतिक परिवेश ऐसा है कि इन्हें अक्सर पहाड़ी चढ़कर ही शाला में पहुँचना पड़ता है। इसके अलावा अपने निजी प्रयोजन के लिए भी और हर रोज़ दो बार छोटी बड़ी टेकड़ी (पहाड़ी) उतर कर नदी में नहाने और पानी लेने जाना होता है। इसके अलावा दो नहीं, तीन या चार बार नाश्ता-खाना करते दिन गुज़रता है। पालक अपने बच्चों को प्राथमिक के बाद माध्यमिक शाला के लिए दूर भेजना पसंद नहीं करते थे, दूसरी ओर बच्चे भी बंद कमरों और ऊँची इमारतों वाले शिक्षण संस्थानों में ऊँची शिक्षा के लिए जाना पसंद नहीं करते थे। शिक्षकों की मेहनत और

प्रयास से, थोड़े खुले परिवेश की शालाओं में ही ये बच्चे टिक पाएँ क्योंकि वहाँ उन्हें उनकी बोली में संवाद जारी रखने वाले दोस्त और सहयोगी मिले। नदी और पहाड़ी के साथ रहकर बढ़े हुए इन बच्चों को शहरी शिक्षा-संस्कृति में ढालना आसान नहीं होता है। अपने-अपने परिवेश और जीवनपद्धति से जुड़कर राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों की परिधि में शिक्षा को ढालने की बात विविधताओं में एकता की राह से आगे ले जानी होगी; जो लोकतांत्रिक और जनवादी होगी। इसी के माध्यम से शिक्षा के समाजीकरण के दूसरे स्तंभ, लोकतंत्र को समझना होगा।

मैक्स वेबर ने कहा है—

“कोई भी सामाजिक प्रक्रिया, चाहे शोध हो या शिक्षा, तटस्थ नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह किसी विचारधारा के आधार पर ही चलती है।”

हमें पूछना चाहिए कि हमारे संविधान में रेखित मूल्यों जिसमें समता के अलावा बंधुता, स्वातंत्र्य और समाजवाद भी सम्मिलित हैं के अंतर्गत क्या हर बच्चे को 14 साल तक ‘शिक्षा का अधिकार’ के तहत शिक्षा मिलती है? इतना ही नहीं क्या शिक्षाकर्मी प्रत्येक बच्चे तक इन मूल्यों को पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है? यह जिम्मेदारी सिर्फ शासन पर डाल देना अव्यावहारिक ही नहीं बल्कि असामाजिक भी है। महात्मा फूले एवं सावित्रीबाई फूले जैसे समाज सुधारकों ने नगरीय समाज की ओर से शिक्षा को एक कानूनी नहीं, बल्कि मानवीय अधिकार मानकर कार्य किया था। आज भी शिक्षा को वंचित समाज और महिलाओं तक पहुँचाने के लिए आवश्यक राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी

है। शासन द्वारा शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की असलियत भी अब हमारे सामने आ गई है। चारगाहों, ढोरों के साथ दिनभर घूमते एवं शहर की गंदी नालियों में से सड़ा हुआ प्लास्टिक निकालकर, भंगार इकट्ठा कर बेचने वाले कितने बच्चे औपचारिक शिक्षा के दायरे में हैं?

शिक्षा में लोकतंत्र-विकेंद्रित विकास नियोजन से

बस्ती/गाँव का हर बच्चे को अपनी निश्चल अवस्था में कोमल उम्र में, कोरी पाटी (स्लेट) जैसे सुंदर, समृद्ध संस्कार पाने के लिए ज़रूरी है कि शिक्षकों का चयन शिक्षा के उद्देश्य, अभ्यास या सीख का क्रम, पद्धति, स्थानीय बस्ती, गाँव और समाज से ही किया जाए। इस तरह स्थानीयता की संस्कृति के साथ न केवल शालाओं की इमारतें खड़ी होंगी, बल्कि एक जीती-जागती व्यवस्था भी तैयार होगी, जिस पर समाज का ध्यान, सहभागिता और निगरानी भी होगी। प्रश्न उठता है क्या ‘शिक्षाविदों’ के बिना समाज की इकाई में इस कार्य को करने के लिए आवश्यक क्षमता की कमी है? इसका उत्तर है बिल्कुल नहीं। यदि प्रत्येक बस्ती या मुहल्ला, गाँव, समाज अपने बच्चों को मूल्याधारित शिक्षा देने के कार्य अपने ही बलबूते पर नियोजित करें तो शिक्षा के माध्यम से नवनिर्माण का एक नया जोश और नया आंदोलन खड़ा हो सकेगा। समाज के सशक्तीकरण के लिए भी यह ज़रूरी है कि वह अपने जीवनदर्शन को समझे, उसे सार्वजनिक बहस में लाए और शिक्षा में समाहित करे, जिससे कि वह अपने भविष्य निर्माण में सहभागी हो सके।

शिक्षा में अपनी मातृभाषा, अपना प्राकृतिक परिवेश से जुड़ाव, समाज की अपनी सांस्कृतिक धरोहर, और वैज्ञानिक तकनीकी योगदान और अपनी अगली पीढ़ी के लिए निरंतर टिकाऊ विकास का नज़रिया प्रतिबिंबित हो। यह एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी के भविष्य निर्माण की ओर अपनी जिम्मेदारी की भावना सुदृढ़ होने के लिए, स्वावलंबी विकास के लिए और विकास नियोजन में आज दिखाई दे रही बेरोजगारी या पलायन जैसी समस्याओं का बुनियादी हल ढूँढ़ने के लिए भी ज़रूरी है।

समतामूलक लोकतांत्रिक विकास नियोजन की प्रक्रिया में शिक्षा या स्वास्थ्य जैसी ज़रूरतों को साथ लेकर चलने की चुनौती आज भी हमारे सामने है। देर से ही सही संविधान में 1992 में समाविष्ट धारा 243 एवं 73-74वें संशोधनों के माध्यम से इसे स्वीकारने के लिए पर्याप्त मौका और अधिकार दिया गया है। पंचायती राज की संरचना गाँवों में एक-एक ग्राम सभा और शहर में वॉर्ड सभा जो योजना प्रारूप तैयार करेगी उसी पर ज़िला विकास योजना तैयार होंगी और इसी आधार पर 'पंचवर्षीय योजना' का ढाँचा खड़ा करना होगा। अनुसूची 11 के तहत पंचायतों द्वारा संचालित करने के कार्यों में प्राथमिक और माध्यमिक, तकनीकी, अनौपचारिक और प्रौढ़ शिक्षा भी सम्मिलित है। लेकिन दुःखद बात यह है कि आज तक किसी भी क्षेत्र में—चाहे ज़मीन का उपयोग, नियोजन और बँटवारा या शिक्षा; पंचायतों, स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं एवं ग्राम सभा की सही भूमिका उभरने ही नहीं दी गई है। देश के योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने 11वीं पंचवर्षीय योजना

को अंतिम रूप देने के लिए सभी मुख्य सचिवों से ग्राम सभाओं में बनाई गई विकास योजनाएँ तुरंत भेजने के लिए पत्र द्वारा दिखावटी आग्रह किया था लेकिन सत्ता केंद्रों में बैठे हमारे ही नुमाइंदों ने सही और ईमानदारी से इस प्रक्रिया को चलाने में कोई रुचि या इच्छाशक्ति नहीं दिखाई।

देश में शिक्षा के क्षेत्र में भी इक्का-दुक्का प्रयोग चल रहे हैं, जिनका लक्ष्य शैक्षिक क्षेत्र में स्थानीय इकाई के सहभाग को बढ़ाना और उसे समृद्ध करना है। नर्मदा घाटी में हमने देखा कि आदिवासी गाँवों में सक्रिय प्रतिनिधियों द्वारा अगुवाही और मेहनत—'जीवन शाला' को ज़मीनी विकास का हिस्सा बनाती है। दशकों से बंद पड़े ज़िला पंचायत के स्कूल या न चलने वाली 'बस्ती शालाएँ', जिन्हें भ्रष्ट प्रशासन की वजह से खोलना संभव नहीं हो पाया, वहाँ गाँववासियों द्वारा स्वयं शिक्षक ढूँढ़ने एवं शालाएँ चलाने में प्रमुख भूमिका अदा करना अपने आप में एक विशेष एवं आत्मविश्वास पैदा करने वाला अनुभव रहा। इन शैक्षणिक संस्थानों के केवल व्यवस्थापन में ही नहीं, बल्कि पाठ्यक्रम तय करने और पद्धति और माध्यम सुनिश्चित करने में गाँव समाज का योगदान बढ़ाने की चुनौती आज भी हमारे सामने है। महाराष्ट्र में विविध संस्था-संगठनों ने कोंकण के सिंधुदुर्ग, कोल्हापुर, पूना, ठाणे एवं नासिक जिले में जिस तरह से शिक्षा में समाजीकरण लाने का कार्य किया है उसे राष्ट्रीय स्तर पर अपनाने की आवश्यकता है। गौरतलब है स्थानीय विशेषताएँ और स्वरूप न बदलते हुए अनेक छोटे (माइक्रो) से लेकर व्यापक (मेक्रो) योजनाएँ बनाना संभव है।

समाज की सहभागिता बढ़ने पर भी शासन की जिम्मेदारी कम नहीं होती बल्कि बढ़ जाती है। जिस प्रकार देश में अपनाई गई मिश्रित अर्थव्यवस्था निजी उद्योगों को स्थान देने के साथ उन्हें नियंत्रित रखने की कुशलता और जरूरी हस्तक्षेप ही यह तय करता है कि अशासकीय योगदान राष्ट्र की औद्योगिकीकरण की दिशा को सही मंज़िल की ओर ले जाए इसी के साथ यह निष्कर्ष भी निकलता है कि निजी क्षेत्र और शासकीय यानि सार्वजनिक प्रयासों के लिए पूरक रहेगा या मारक; ठीक वैसा शिक्षा क्षेत्र में भी है। स्थानीय से आगे बढ़कर राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दायरे की बात हमारी शिक्षा नीति में अपरिहार्य है। आज जबकि पूरी दुनिया को ग्लोबल विलेज (वैश्विक गाँव) की संकल्पना में ढालने में सरकारें और समाज के कुछ तबके कार्यरत हैं तब शिक्षा के बुनियादी ढाँचे, औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के भी नीति नियम और माध्यम, मूल्यों की नींव और उद्देश्यों की छत ठीक होने से ही हमारी अपेक्षा पूरी होगी। सर्वव्यापी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए समाज को चुने हुए शासन के साथ मिलकर ऐसी शिक्षा-नीति और प्रणाली बुननी होगी जिसकी आज कमी महसूस की जा रही है। हाँ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने इस ओर प्रयास किए हैं। पिछले दो-तीन सालों में समाज से सहभागिता यानि सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं के साथ हो रहा आदान-प्रदान भी पाठ्यक्रम पर अपना असर डालता रहा है। यह खुली प्रक्रिया शिक्षा ही नहीं व्यापक समाधान के क्षेत्र में कार्यरत एक बड़ी बिरादरी शासकीय शिक्षा कार्य में भी सहयोग को बढ़ावा देती हुई

दिखाई दी है परंतु इसे अप्रासंगिक और निष्क्रिय बना दी गई इकाइयों (कम-से-कम जिले तक) तक पहुँचाना जरूरी है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह प्रक्रिया सिर्फ बहस या संगोष्ठियों तक सीमित होकर ही न रह जाए बल्कि इस संदर्भ में आम सहमति पर पहुँचना आवश्यक है। विषमता, मतभेद और भेदभाव से भरपूर हमारे समाज में यह कार्य आसान नहीं है, परंतु इससे छुटकारा पाने का प्रयास तो करना ही होगा। क्रांतिकारी शिक्षामहर्षियों ने इस दिशा में अमूल्य योगदान दिया है।

बुनियादी शिक्षा की कल्पना की बात गाँधी-टॉलस्टाय से शुरू करें। उन्होंने समाज में शांति के साथ-साथ न्याय की प्रतिष्ठापना भी अपनी बुनियादी शिक्षा की सोच में समाहित की थी। गाँधी जी ने तो शिक्षा को जीवन का हिस्सा बनाने के लिए ही इसे रोजागार से ही नहीं बल्कि श्रम से जोड़ा था। उनकी संकल्पना थी ऐसी शिक्षा जिससे श्रम की प्रतिष्ठा भी बढ़े और शिक्षा का स्थान भी स्थापित हो। साथ ही इसके माध्यम से मनुष्य अपनी जरूरत पूर्ति में सक्षम हो। हाथ से किये काम को कमतर आँकना और बुद्धिजीवी कार्य को उच्च—उसी पर जीने वाले समाज के तबके भी प्रतिष्ठित मानने की भावना और विचार से मुक्ति ही इस शिक्षा की सोच है। समता की महत्ता और ऊर्जा बढ़ाने वाली शिक्षा ही यह हासिल कर सकती है। इस विचार से देश में व्यावसायिक शिक्षा को स्थान मिला लेकिन वह महजा एक औपचारिकता या अधिकृत योजना—सी बनकर रह गई। आज तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि व्यावसायिकों के अपने हित में चल रही शिक्षा

सिर्फ 'मार्केटिंग' के कार्य का ही हिस्सा बनकर रह गई है। शिक्षा का लालित्य अपेक्षित प्रतिभा, सृजनशीलता, जीवन और जीविका के साथ जुड़ाव और उसमें समाज के सहयोग की बुनियाद ढहकर यह मात्र एक रोजगार (कमाई) का साधन बन गई है।

व्यवसायों में भी कुशलता के प्रशिक्षण की ज़रूरत उन तबकों को है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चल रहे व्यवसाय में नया तंत्रज्ञान जोड़कर विकास का हिस्सा बन सकते हैं। उन तक पहुँचकर और उनके योगदान से आगे बढ़ने की तमन्ना शिक्षा योजनाकारों में कदाचित ही दिखाई देती है। जातिगत व्यवसायों को 'आरक्षित' रखना कोई नहीं चाहता लेकिन साथ-साथ नये तंत्र और यंत्र के युग में पारंपरिक व्यवसाय पर जी रहा तबका, जो खेतीहरों, बुनकरों और अन्य दस्तकारों का है, उनके लुप्त हो जाने के प्रति हम अधिक चिंतित नज़र नहीं आते? हर बजट में इन सबका ज़िक्र होते हुए भी व्यावसायिक शिक्षा की योजना बुनियादी शिक्षा की मूलभूत संकल्पना को केंद्र में रखते हुए इन समुदाय के उच्च वर्ग निर्माण को ध्यान में रखकर लेकिन रोजगार निर्माण की दिशा देने वाली क्यों नहीं बन सकती?

शिक्षा का बाज़ारीकरण — बदली मंज़िल बदली राहें!

शिक्षा के बाज़ारीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण इसका कंपनीकरण है। कंपनियों का हावी होना केवल शिक्षा के निजीकरण तक सीमित नहीं है। इससे शिक्षा की बुनियाद (विशेषतः उच्च शिक्षा की), कॉर्पोरेट जगत के मान्य उद्देश्यों, ज़रूरतों,

मानवी संसाधनों की उसमें चल रही स्पर्धा आदि के अनुरूप सफलता हासिल करने वाली बनती जा रही है। बाज़ारीकरण के इस युग में शिक्षा का बड़ा हिस्सा विशाल निजी पूँजी निवेश से चलाए जा रहे संस्थानों द्वारा संचालित होता जा रहा है जिसका विपरीत प्रभाव शासकीय या सामाजिक अगुवाही वाले शिक्षा कार्यों पर भी पड़ रहा है। अँग्रेजी शिक्षा माध्यम की हर जगह आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'सृजन' केंद्रित उत्पादन में सहायक शिक्षा के बदले अप्रत्यक्ष सेवाओं के लिए ही 'शिक्षित कैडर' तैयार करना, या फिर देश के सामाजिक-आर्थिक सवालियों को आत्मसात करने और उनका हल सुझा सकने वाली शिक्षा की जगह अंतर्राष्ट्रीय मान्यताप्राप्त भौतिक उच्चाँकों, प्रतीकों और पद्धतियों में माहिर बनने की कोशिश शिक्षा का मूल उद्देश्य बनता जा रहा है। उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश न पाने वाले गरीब या दलित समाज के मन में हीनता पैदा करने वाली आर्थिक पूँजी के माध्यम से फैलने वाली इस गैर-बराबरी शिक्षा के बाह्य हुए प्रभाव, दबावों को समाज में इसे 'आधुनिक राह' न पाने वाले बहुसंख्य युवा भुगतते हैं। इससे पार पाने के प्रयासों में वे अपने स्थानीय और पारंपरिक रिश्ते तक खो बैठते हैं और परिणामस्वरूप शिक्षा से ज्ञान को नज़र अंदाज कर वैभवशाली सम्मान पाने की ईर्ष्या में लिप्त हो जाते हैं।

'आधुनिक पूँजीवादी विकास' में मानव संसाधनों को भी 'पूँजी' मानकर उसे समाज विकास का माध्यम नहीं बल्कि बाज़ार निवेश के साधन के रूप में विकसित करने की सोच बढ़ती जा रही है। आज भी शालाओं में बड़ी संख्या (करीबन

90%) शासकीय शालाओं की ही है। इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की न्यूनतम हिस्सेदारी के बावजूद अंबानी-बिरला जैसे उद्योगपतियों ने शिक्षा संबंधित एजेंडा बनाने का कार्य अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया। वैसे उनका प्रस्ताव लोकसभा में पारित नहीं हो पाया परंतु इससे एक स्पष्ट संदेश उभरा कि “पूँजी प्रत्येक वस्तु के साथ-ही-साथ जमीन भी खरीद सकती है और वह न केवल वस्तुओं का किंतु ‘विचार’ का भी उत्पादन कर सकती है।” वैश्वीकरण के साथ ‘उदारीकरण’ के नाम पर पूँजीपतियों को अधिक छूट, अधिक सब्सिडी, अधिक जमीन और प्राकृतिक संसाधन देने की नीति न केवल देशी बल्कि विदेशी पूँजी और माध्यमों को भी बड़ी मात्रा में उपलब्ध करवाई जा रही है। उड़ीसा की ‘वेदांत यूनीवर्सिटी’ का वेद या अध्यात्म से कोई संबंध नहीं बल्कि यह स्टर लाइट कंपनी का ही दूसरा नाम है। अपना गैर-कानूनी और अन्यायपूर्ण तरीके से बढ़ाया गया खदानों का व्यापार सुरक्षित और प्रचारित करने के लिए अब कंपनी शिक्षा जैसे सामाजिक कार्य में अपने कदम आगे बढ़ा रही है। इस विश्वविद्यालय को दी जा रही हजारों एकड़ जमीन एवं विस्थापन के खिलाफ स्थानीय आक्रोश चरम सीमा पर है वहीं सर्वोच्च अदालत भी एक बार उनका लीज अनुबंध रद्द कर चुकी है। कोका कोला हो या एनरान, उनका शिक्षा के नाम पर उन क्षेत्रों में जहाँ वे विकसित होते हैं अपना धंधा बरकरार रखना है। वे जिस तरह से लाभ कमाते हैं वह किसी से छिपा नहीं है। अपनी पोल खुलने के डर से वे स्थानीय समुदाय में फूट डालते हैं। इतना ही नहीं वे स्थानीय स्तर

के सार्वजनिक विद्यालय या तो खरीद लेते हैं या कानून को तोड़-मरोड़ कर बंद करवाते हैं और जिसका पूरा ब्यौरा समाज के सामने नहीं आ पाता है। मुंबई में महानगर पालिका की एक शाला की जगह अंतर्राष्ट्रीय स्कूल खुलवाने की साजिश और वहाँ पहले से पढ़ने वाले बच्चों द्वारा लाख रुपये सालाना फ्रीस देने में असमर्थ होने के कारण उन्हें हटाकर अन्य समृद्ध परिवारों के बच्चों की भर्ती की हकीकत, ‘सूचना का अधिकार’ का उपयोग करते हुए उजागर की गई। इसके पश्चात् महानगरपालिका के आयुक्त को उस अंतर्राष्ट्रीय स्कूल को बंद करना पड़ा, लेकिन मुख्यमंत्री जी ने कोई अर्वादि सा कारण बताते हुए स्कूल को क्लीन चिट देकर आज तक चालू रखा हुआ है। वैसे ही शिक्षा का निजी धंधा बढ़े, इसलिए सार्वजनिक, सरकारी शालाओं को धीरे-धीरे बंद करने की मध्य प्रदेश सरकार की हकीकत या उन्हें साधन और समर्थन न देते हुए कमजोर या अव्यावहारिक बनाने की प्रक्रिया ‘सर्व शिक्षा अभियान’ की घोषणा जारी रखते हुए भी आगे बढ़ रही है, यह बहुत ही चिंता की बात है। मुंबई और महाराष्ट्र का अनुभव यह भी है कि उर्दू, तमिल, कन्नड़ जैसी भाषाओं में प्रादेशिक विभिन्नता से भरे शहरी समाज के बच्चों को पूर्व में अपनी मातृभाषा में जो शिक्षा प्राप्त होती थी वह अब मानवता के अभाव में बच्चे नहीं, और बच्चे नहीं इसलिए ध्यान नहीं, जैसे दुष्चक्र में फँसती जा रही है। शासन से जरूरी साधन, मानव संसाधन याने अच्छे शिक्षक और उनका प्रशिक्षण भी आंगनवाड़ी से उच्च माध्यमिक तक और उससे भी आगे (आईआईटी, आईआईएम जैसे कुछ

सफ़ेद हाथी से दिखाई देने वाले शिक्षा संस्थान छोड़कर) पर्याप्त रूप में उपलब्ध न किए जाने की स्थिति में सहायता जुटाने के नाम पर निजी कंपनियों या पूँजीपतियों यानि मुनाफ़ाखोरों का प्रवेश विविध मागों से हो रहा है। इसे स्वीकार ही नहीं बल्कि सराहा भी जा रहा है। अंबानी की रिलायंस कंपनी को मुंबई में महानगर पालिका की शालाओं के पास बची ज़मीन बेचने की योजना ऐसी ही एक योजना है। इसके अंतर्गत बेची हुई ज़मीन के बदले उस विद्यालय को कंपनी से मात्र एक 'कंप्यूटर लैब' प्राप्त हो पाएगी। यह सब क्यों हो रहा है यह सहज ही समझा जा सकता है।

इस तरह की पूँजी केवल कंपनियों का हस्तक्षेप ही नहीं बल्कि उनके इस क्षेत्र में प्रवेश और कब्जा, राजनीतिक हस्तक्षेप का प्रत्यक्ष उदाहरण है। दूसरी ओर शिक्षा को बुनियादी अधिकार मानने के बावजूद पर्याप्त वित्तीय सहायता न देने वाली राजनीति राजनेताओं के लिए कमाई का साधन बन गई है। इसे प्रत्येक राज्य में मंत्री या छोटे-बड़े राजनेताओं द्वारा खोले गए अथवा खोले जा रहे शिक्षा संस्थानों का स्वामित्व: समझा जा सकता है। इस देश में एक 'शिक्षा साम्राज्य' स्थापित होता जा रहा है। महंगी शिक्षा से वंचित समाज की मजबूरी साफ़-साफ़ नज़र आती है। फिर चाहे वह बस्ती की किसी बहन द्वारा अपने 4 साल के बच्चे को नर्सरी में डालने की कोशिश हो या दलित बहुजन समाज में आरक्षण या बिना आरक्षण के ऊपर आए विद्यार्थियों को कर्जदार बनाकर शिक्षा प्राप्त करने की लाचारी हो या किसान परिवार द्वारा स्वयं को बंधक

रखकर अपने बच्चे को दिलाई गई शिक्षा हो जो कि पहले 'डिग्री' उसके बाद स्वयं को 'नौकरी' पाने की तड़प तक सीमित कर लेती है। जो अंततः एक घृणास्पद बोझ के रूप में सामने आती है। गैर-सरकारी प्रयासों को प्रोत्साहित करने के प्रति *केपिटेशन फी* या चमचमाते आलीशान शिक्षागृहों के माध्यम से लूट की छूट देने वाले शासनकर्ता और जिन्होंने अपनी स्वयं की तिजोरी में जैसे—उद्योग, खनिजदोहन या गृहनिर्माण जैसे अन्य क्षेत्रों में खुले हाथों से लुटवाई है, वैसा ही अब ये शिक्षा के क्षेत्र में कर रहे हैं और इसी के परिणामस्वरूप निजी पूँजी निवेश का सबसे चहेता क्षेत्र बन गई है। शिक्षा पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ा रही है। शासन से ऐसी संस्थाओं के लिए बड़े पैमाने पर दान, जमीन आबंटन तथा सभी टैक्स में मिल रही छूट से शिक्षा के इन दुकानदारों को बढ़ावा मिल रहा है। इसका वज़्रपात न केवल दलित, पीड़ित समाजों पर जो आरक्षण के बावजूद वंचित रहे हैं बल्कि अन्य जाति संप्रदाय के आर्थिक दृष्टि से कमजोर तबकों पर भी हुआ है। फलस्वरूप आरक्षण के मुद्दे पर शिक्षा में समता के नाम पर विद्यार्थियों के मध्य टकराव ही नहीं, आपसी द्वेषभाव यानि जातिवाद को भी बढ़ावा मिला है। आरक्षण विरोधी आंदोलन ने आरक्षण के उद्देश्यों को मिटाने के बीज समाज में डाल दिए हैं। कई जानकारों का मानना है कि आरक्षण नीति को खत्म करके शिक्षार्थियों को अपने उपभोक्ता बनाने के लिए अधीर कंपनियों, पूँजीपतियों का भी इस विवाद को हटा देने में हाथ था। संवैधानिक समतावादी पहल को समाप्त करने वाले बाजारू प्रभाव दबावों का

यह सिलसिला जो आज राजनीति को जोड़कर चल रहा है उसका अंतिम परिणाम क्या होगा यह कह पाना मुश्किल है लेकिन इसकी भयावहता जाखूर समझ में आ रही है।

निजीकरण की इस साजिश में न केवल पूँजीपति बल्कि राजनेता भी शामिल हैं ये अपने निजी विद्यालय, महाविद्यालय या शिक्षा संस्थान खोलना जारी रखते हुए, शासकीय सहायता और सहानुभूति के विशेष पात्र बने हुए हैं। दूसरी ओर शिक्षानीति में भी अब शासन की जिम्मेदारी के साथ-साथ या कई मामलों में तो उससे भी अधिक विश्वास गैर-शासकीय शिक्षा संस्थानों पर किया जा रहा है। हमारा अनुभव रहा है, बड़े-बड़े बिना अनुदान शिक्षा संस्थानों को भरसक छूट देने वाला शासन किंतु छोटी, प्रयोगशील शालाओं के प्रति बिल्कुल भी सहिष्णु नहीं। इसी का परिणाम है कि समाज में, किसी गरीब बस्ती या आदिवासी गाँव में शुरू की हुई एकाध प्राथमिक पाठशाला भी, बिना अनुदान के या शासकीय मंजूरी के बिना नहीं चलाई जा सकती। इस नियम को दिखाकर नर्मदा किनारे की जीवनशालाओं को बंद करने का नोटिस जब महाराष्ट्र शासन ने दिया तब हमें समझ में नहीं आ रहा था कि हम इस पर हँसें या रोएँ। उन्होंने इसके कारण गिनाए। उनके अनुसार हमारे पास इन्हें चलाने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं थे जबकि हमारी 10 से अधिक जीवनशालाएँ पिछले 10 सालों से सुचारु रूप से चल ही रही हैं और उनमें वे कोई कमी दिखा ही नहीं सकते थे। शाला बंद करने का दूसरा कारण दिया था कि क्षेत्र में ज़िला परिषद् के पर्याप्त स्कूल चल रहे हैं इसलिए और किसी

स्कूल की जरूरत नहीं है। यह हँसी की नहीं बहुत ही गंभीर बात है क्योंकि सतपुड़ा की घाटी के शत-प्रतिशत आदिवासी पहाड़ी क्षेत्र में जहाँ हमारा संगठन सक्रिय है ज़िला पंचायत की एक भी प्राथमिक शाला का अस्तित्व ही नहीं है। फिर ये झूठ क्यों? पहली से चौथी तक इन शालाओं में अध्ययन करने पर शासकीय परीक्षा में भाग लेने की मंजूरी शासन से आसानी से क्यों नहीं मिलती? क्यों जीवनशालाओं जैसे समाज से पुरस्कृत उपक्रमों को शासन द्वारा मान्यता नहीं दी जाती? सच तो यह है कि यह निर्णय शिक्षा के समाजीकरण के खिलाफ़ और बाजारीकरण के पक्ष में बिना अनुदान के चलने वाली शालाएँ बंद करना शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि शिक्षा की कीमत बढ़ाने के लिए है। जाहिर है कि अनुदान के बँटवारे में राजनेताओं का, अधिकारियों का कमीशन तय होने से और बड़ी कंपनियों या कंपनियों जैसे संस्थानों की शालाओं को ही नहीं, विश्वविद्यालयों को भी शासकीय मान्यता और बढ़ावा मिलने से नगरीय समाज के छोटे किंतु स्वतःधूर्त प्रयास असमय मौत का शिकार हो रहे हैं। शिक्षा क्षेत्र में समाजीकरण की जगह निजीकरण को बढ़ावा मिल रहा है।

बदलाव की दिशा

तीन पहलू – समान, जीवनदायी और मानवीय शिक्षा

इस स्थिति में बदलाव लाने के लिए चिंतित लोग देशभर में मौजूद हैं। उनके सामने बहुस्तरीय चुनौतियाँ हैं। पहली है—नीतिगत बदलाव और समान शिक्षा के हक को आगे बढ़ाने की। दूसरी,

शिक्षा के विषय, पाठ्यक्रम के साथ-ही-साथ माध्यम को भी जनवादी बनाने की तथा तीसरी, शिक्षा को सामाजिक एकता, राष्ट्रीय एकात्मकता और मानवीय रिश्तों का माध्यम बनाने की।

समान शिक्षा की बात धीरे-धीरे केवल हक की नहीं, एक नये आंदोलन की बुनियाद बनती जा रही है। आज बस्ती स्तर पर समाज सिर्फ महात्मा फुले और सावित्रीबाई से प्रेरणा लेकर ही शिक्षा के फैलाव की नहीं सोच रहा बल्कि अब तो उसके द्वारा बाबा साहब तक से प्रेरणा लेकर सामने आई महिलाएँ और बहुजन समाज इसके माध्यम से अपने सामाजिक-आर्थिक बदलाव का सपना भी हासिल करना चाहता है। इसी वजह से शिक्षा को बाजारी वस्तु न बनने देने का संकल्प जनसामान्य से अपेक्षित है। आज जनसँख्या का बड़ा भाग शिक्षा से पूर्णतः वंचित है। अगर जातिवाद से निपटने की घोषणा के बावजूद इस नये प्रकार का जातिवाद उभरने के लिए आर्थिक विषमता मूल कारण है तो इस विसंगति को समाप्त करने के लिए शासन के हस्तक्षेप का रास्ता खुलना जरूरी है। सहायता देते समय शासन ने समान शिक्षा की जिम्मेदारी उठानी चाही। इस बात पर अपना विश्वास व्यक्त करते हुए हर तबके का मत है कि वित्तीय जवाबदारी का भय न रखते हुए शिक्षा पर खर्च की जाने वाली महाकाय राशि की प्राथमिकता जब सरकार तय करेगी तभी स्थिति बदलेगी परंतु ऐसा होता दिखाई नहीं पड़ता। अंबानी या टाटा, मित्तल या जिंदल की कंपनियों को करोड़ों रुपये देने वाला शासन विद्यार्थियों के लिए मुक्त शिक्षा के लिए क्यों तत्परता नहीं दिखाता? भारत की जनता को यह

मालूम होना चाहिए कि फ्रँस, क्यूबा जैसे कम जनसँख्या वाले देश ही नहीं चीन जैसे (अपनी तरह) बहुल जनसँख्या के देश में भी सरकार शिक्षा की पूर्ण जिम्मेदारी उठाती है। आँगनवाड़ी से लेकर उच्च व्यावसायिक शिक्षा तक का सारा खर्च शासन को उठाने की जरूरत है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सब कुछ सरकारी और भ्रष्टाचारी पद्धति से ही आगे बढ़े। शासन द्वारा लोकतांत्रिक होकर शिक्षाकार्य चलाने का अर्थ है, गैर-सरकारी यानी सामाजिक योगदान को साथ लेकर चलना। इसका अर्थ स्थानीय, राष्ट्रीय, विविध स्तर के शिक्षा शास्त्री, विद्वान या वैज्ञानिक और देशी-विदेशी तकनीक को पूर्ण रूप से नकारना भी नहीं है। शिक्षा को देश की संस्कृति को लेकर नया भविष्य बनाने का सपना ही नहीं बल्कि यहाँ की वास्तविक जरूरतों के आकलन का माध्यम भी बनना होगा। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि हमारे जीवन से छेड़छाड़ न हो, यह समाज और शासन, दोनों की जिम्मेदारी है।

मंडल आयोग ने हमारे बंधुता, समता, न्याय के मूल्यों को शिक्षा में उतारने का संदेश दिया। पर आज भी चप्पल और स्लेट के अभाव में, दूरी के कारण पहुँचने में असमर्थ होने से एवं छात्रावास में जगह न पाने पर वापस लौट आने वाले दलित, आदिवासी, बहुजन समाज और गरीबी भुगतने वाले बच्चे हमारी आँखों के सामने हैं। उन्हें साथ लेने के नाम पर वोटों की राजनीति ज़रूर चलती रही है लेकिन इन वंचितों तक पहुँचने के उद्देश्य से ही गठित की गई कोठारी आयोग कि शिक्षा पर बजट का 6% खर्च करने की सिफ़ारिश अभी तक प्रत्यक्ष रूप नहीं ले पाई है। 2000 से 2007 तक

शिक्षा पर केवल 2 से 3.2% तक ही खर्च हुआ। शहरी धनिकों के उपभोग से जुड़े भव्य 'इंफ्रास्ट्रक्चर' (जैसे—हायवेज, हवाई जहाज अड्डे इत्यादि) पर हो रहे खर्च, कर्मचारियों के वेतन हेतु छोटे वेतन आयोग का बोझ डालने वाले खर्च की तुलना फिर 'सुरक्षा' पर हो रहे खर्च की तुलना यदि शिक्षा पर होने वाले खर्च से करें तो मन में आक्रोश पैदा होता है। आज की राजनीति गलत प्राथमिकताओं पर ही पलती है। अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि आजादी के 60 साल बाद भी देश में विद्यमान इस विषमता को दूर करने के सामाजिक उद्देश्य को हासिल करने में भारत के शासक, राजनेताओं की कोई रुचि नहीं है। इसलिए शिक्षा में गैर बराबरी से चिंतित शिक्षा प्रेमियों को एवं जनसामान्य को इस कार्य के लिए मशाल जलाना जरूरी है।

जीवनदायी शिक्षा—दूसरी मंज़िल

आम जनता यह कार्य संघर्ष द्वारा कर सकती है। आज आवश्यकता है अर्थनीति में शिक्षा को स्थान और सम्मान न देने वाली तथा शिक्षा के पक्ष में इच्छाशक्ति न रखने वाली राजनीति से संघर्ष की। समाज में शिक्षा के प्रति आग्रह में विस्तार के प्रति जागरूकता बढ़ाने का कार्य केवल कुछ शिक्षाशास्त्रियों या चंद बुद्धिजीवियों की वकालत करने से संभव नहीं होगा। इसके लिए एक भूमि और भूमिका तैयार करनी होगी। शिक्षा से बहुसंख्यकों को वंचित रखने वाला 'नव ब्राह्मणवाद' जब आम लोगों की समझ में आ जाएगा, तब उन्हें शिक्षा की माँग अपनी अस्मिता और विकास के लिए अनिवार्य मानकर, इसके लिए उठ खड़े होने में समाज को देर नहीं लगेगी। 'शिक्षा' में राजनीतिक घुसपैठ नहीं

किंतु शिक्षा को लेकर लोगों की माँग को समर्थन दिलवाने में राजनीतिक स्पर्धा का निर्माण करना जरूरी है। किंतु महज चुनावी प्रचार में ही नहीं बल्कि सतत रूप से समान शिक्षा के मुद्दे पर जनशक्ति जुटाकर कार्यरत रहने से ही यह संभव होगा। दलितों, आदिवासियों, श्रमिकों के साथ जल-जंगल- जमीन, विस्थापन, सामाजिक न्याय या अन्य किसी भी मुद्दे पर कार्य करने वाले जनसंगठन यदि ठान लें तो वे एक ऐसी परिवर्तनवादी शिक्षा शैली के निर्माण में सहायक हो सकते हैं जो समाजीकरण को बल दें।

आवश्यकता है प्रचलित पाठ्यक्रमों को आज की वास्तविकता से जोड़ने की। समाज में 'आधुनिकता के नाम पर हो रहे बदलाव' शिक्षा के नए आयामों की जरूरत महसूस करवा रहे हैं। शिक्षा में दुनिया की हर घटना और तकनीक को सम्मिलित करने की स्पर्धा लगी हुई है। लेकिन आवश्यकता है भाषा की विविधता, जैव संपदा, सादगी, मेहनत और निरंतरता के आधार पर बनी जीवन प्रणाली की सोच की, शिक्षा नीति ही मसौदों में केवल परिलक्षित न हों बल्कि प्रत्येक बालक तथा पालक के दिल-दिमाग में भी बस जाए, इसलिए मात्र शिक्षा के उद्देश्य और सिद्धांत तय करने वालों की आवश्यकता नहीं है बल्कि अपना भविष्य तय करने में समाज सहयोग की प्रक्रिया आगे बढ़ाने वालों की भी जरूरत है। महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में *हॉलो फाउंडेशन* ने मुस्लिम एवं दलित बस्तियों में स्वास्थ्य संबंधी कार्य में सैकड़ों विद्यार्थियों को ले जाने में सफलता प्राप्त की है। तो कृष्णमूर्ति *फाउंडेशन* चेन्नई के स्कूल के और केरल में त्रिथूर के पास की 'ग्रीन सालसाबिल' के छात्र-छात्रा

क्रोकाकोला विरोधी संघर्ष हो या नर्मदा घाटी का सत्याग्रह, हर परिवर्तनवादी आंदोलन में न केवल पहुँचते हैं बल्कि अपने शिक्षकों के साथ पूरा अध्ययन कर उन मद्दों पर बहस भी करते हैं। इसे केवल शोधपरक सहभागिता का जामा न पहनाते हुए जासूरी है कि यह शिक्षा का हिस्सा बने। कई बार दिखता है कि उच्च वर्ग-जाति के स्कूलों में पर्यावरण की जागृति लाने वाली शिक्षा की कोशिशें अधिक होती हैं लेकिन आदिवासी या किसानों के क्षेत्र की शालाओं में कम। अपने परिवेश से भिन्न जीवन और संदर्भ की तरफ रुचि और उसे जानने की उत्सुकता तो ठीक है लेकिन सोच समझकर अपने संसाधनों से अधिकारों तक को समझने, जानने की दिशा में पाठ्यक्रमों को ढालना और उसे 'बुनियादी' शिक्षा के रूप में अपनाना तभी संभव हो सकता है जब शिक्षा का कार्य सही अर्थ में समाज कार्य बने। गाँव में शिक्षक पहुँच रहे हैं या नहीं, इसका हिसाब रखने के लिए ही केवल सरपंचों और जहाँ शाला चल रही हैं, उस घर के मालिक या पड़ोसी के हस्ताक्षर लेने तक ही ग्रामीण शिक्षा में 'सहभागिता' ली जाती है। शहरी शिक्षा में तो यह भी नहीं होता है। धनिकों के स्कूलों में भी हमने देखा है कि सुशिक्षित माता-पिताओं को समारोहों में सजधजकर आने में और अपने बच्चों को प्राप्त पुरस्कारों में ही दिलचस्पी होती है। बच्चे को दी जाने वाली शिक्षा में छिपे मूल्य और 'जीवन संदेश' के प्रति उन्हें कोई चिंता नहीं होती। हमें इस दिशा में सोच जागृत करनी होगी।

वर्तमान शाला व्यवस्था के बाहर वंचित तबकों के बच्चों और माँ बाप तक पहुँचना है तो शासन को पूरी शिक्षा प्रणाली में खुलापन लाना होगा।

'जहाँ बच्चे हैं, वहाँ शाला' के सिद्धांत को मूर्त रूप देना होगा। बाल मजदूर बने बच्चों से लेकर अपने छोटे भाई को सँभालने के लिए घर में बिठाई गई बच्चियों तक, सबको हमें अपने शिक्षा अभियान या 'जीवन शाला' में शामिल करना होगा। महाराष्ट्र में दिवंगत अनुताई वाघ द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में 'चरागाह स्कूल', पत्थर की खदानों में कार्यरत मजदूरों के बच्चों के लिए 'दगड़ी शाला' याने पत्थर शाला एवं शुगर फैक्ट्रियों के लिए गन्ने काटने वालों के बच्चों के लिए 'साखर शाला' याने 'शक्कर शाला' ऐसी ही संकल्पना के प्रतीक हैं। लेकिन 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे शासकीय प्रयासों में अभी भी ऐसी विविधता और जमीनी शिक्षा कार्यक्रमों की कमी या उद्देश्य के प्रति कटिबद्धता की मर्यादा के कारण ये कार्यक्रम अपना दायरा बहुत नहीं बढ़ा पाए हैं।

शिक्षा से रोजगार पाने की इच्छा है तो 'रोजगार' से शिक्षा को जोड़ना रोजगार से जीवन को जोड़ने के जैसा होना चाहिए। बाल मजदूरों के संबंध में मालिकों और बच्चों को पढ़ाना जरूरी न मानने वाले परिवारजनों को केवल कानून के सहारे नहीं, बल्कि सामाजिक स्तर पर चाहे उद्योग हो या बस्ती या वॉर्ड, शिक्षा के प्रबंधन के कार्यक्रम से लेकर शिक्षाकर्मी और समाज के बीच संवाद की प्रक्रिया आवश्यक है। इससे भावी पीढ़ी की ही नहीं वर्तमान पीढ़ी की वैचारिक अवधारणा भी और स्पष्ट होगी इसके अतिरिक्त सामाजिक एकता को भी इससे बढ़ावा मिलेगा। इसी के साथ स्वावलंबी विकास के प्रत्येक कार्य में सहभागिता, समाज में लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया को बढ़ावा

जैसे कई लाभ भी प्राप्त हो सकते हैं। समाज में 'शिक्षा' से संबंधी एक ऐसी छुपी आस है जिसका उपयोग शिक्षा के समाजीकरण के लिए जनता को जगाने की सुप्त शक्ति की पूँजी के रूप में किया जा सकता है।

राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भाव की शिक्षा

बाबा साहब अंबेडकर के संदेश से शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट है—सीखो, संगठित हो, संघर्ष करो। सीखने के बाद संगठित होने का अर्थ है शिक्षा को इंसानों, नागरिकों के जुड़ाव का साधन बनाना। आज देश में फैलती जा रही सांप्रदायिकता फिर चाहे—जाति, मजहब या प्रांत के नाम पर या संप्रदाय के आधार पर बढ़ती जा रही हो, अस्मिता की राजनीति को एक चुनौती है। आतंकवाद की सबसे खतरनाक जड़ इसी में है, बंदूक या बम में नहीं। क्या शिक्षा इसे निपटाने का औजार हो सकती है? क्यों नहीं? समान शिक्षा—शिक्षा की एक ऐसी धारा होगी जिसमें अंबानी-टाटा और उनके मजदूरों के बच्चे एक साथ पढ़ेंगे; हिंदू, मुस्लिम, सिख, जैन या बौद्ध समाज के बच्चे साथ-साथ पढ़ेंगे। आतंकवाद के इस नए स्वरूप से निपटने का इससे अधिक प्रभावी साधन क्या हो सकता है। सच्चर आयोग की रिपोर्ट हो या मंडल आयोग का अनुकथन इसी विषमता को उजागर करता है। बहुजन या अल्पसंख्यकों को विशेष स्थान, सम्मान या सहूलियतें देने के साथ दोनों रिपोर्टों में विषमता निर्मूलन के साथ ही साथ जाति निर्मूलन के लिए जो सिफ़ारिशें की गई हैं; उन पर भी अमल तो होना ही चाहिए। लेकिन

सबसे पहले शिक्षा के औपचारिक पाठ्यक्रमों में छुपे या वाक्यों के बीच छिपे भेदभाव की खोज जैसे प्रसंगों को निकालना सबसे अहम् है। इसी के साथ ही पाठशाला-विश्वविद्यालयों के बाहर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे सभी माध्यमों की चिकित्सा की भी अत्यंत आवश्यकता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार प्रसार में 'शिक्षा' का भरपूर एजेंडा है। अगर सांप्रदायिकता फैलाने में मददगार होता है तो सर्वधर्म समभाव का स्कूली शिक्षा पाठ भी बच्चे के मन पर असर नहीं कर पाता। राज ठाकरे द्वारा फरवरी-2008 में ही शुरू किए प्रांतीय आधार पर हमले के चित्र बार-बार देखकर युवा द्वारा 'हमारे रोजागार पर बिहारी की बुरी नजार क्यों जैसे सवाल के साथ युवा का खड़े हो जाना कतई अस्वाभाविक नहीं है। औपचारिक नहीं तो अनौपचारिक 'शिक्षा' द्वारा लोकतंत्र में अपने विचार रखने की, किसी धर्मवादी या जातीय भावना की आजादी को भी हम सहजता से नकार नहीं सकते। इसके बावजूद समझ बढ़ाने वाले कार्यक्रमों के द्वारा शिक्षा ही नहीं, जीवन मूल्यों पर समाज में तीखी बहस को किसी तरह की कानूनी कार्रवाई के पहले प्रारंभ कर भी सामाजिक माहौल का दबाव तैयार करना जरूरी है। यह कार्य कठिन अवश्य है परंतु असंभव नहीं। शिक्षा में प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्टता, संस्कृति, विशेषताएँ और अस्मिता भी बनी रहनी चाहिए। शासनकर्ता राजनीति के भेदभावपूर्ण आचरण में डूबे हुए हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए समाज का उनपर भी अंकुश एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। अतएव शासन को उसकी जिम्मेदारी का भान कराते हुए शिक्षा के तमाम

उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए शिक्षा के समाजीकरण की ओर मोड़ना होगा। इस हेतु आज राजनीतिक हस्तक्षेप से ही नहीं बल्कि गैर बराबरी फैलाती आर्थिक सत्ता के बाजारू हाथ में पड़ा शिक्षा का वास्तविक 'समाजीकरण' अथवा 'लोकतांत्रिकरण' करने में समाज को पहल करनी होगी। यह आवश्यक है 'स्वतंत्र शिक्षा आयोग' के साथ-साथ हर जिले में शिक्षा सहयोग प्रतिष्ठान, जिसमें पब्लिक पार्टनरशिप (जनता की पूर्ण भागीदारी) के सिद्धांत पर अमल भी हो और सारा शिक्षा क्षेत्र उसी की निगरानी में रहे। ग्राम सभा और वार्ड सभाओं की भूमिका प्राकृतिक संसाधनों के अधिकार और नियोजन के लिए जितनी जरूरी है, उतनी ही शिक्षा जैसे 'सामाजिक संसाधन' से संबंधित अधिकार और कर्तव्य को लेकर भी है। हम सब, जो आज की स्थिति में परिवर्तन चाहने वाले अध्यापक, विद्यार्थी, पाल्य और पालक के नाते नहीं बल्कि नागरिक होने के नाते और इंसानियत की अहमियत मानते हुए प्रशासकीय संरचना में ही न फँसते हुए, सक्रिय होकर न केवल विविध शिक्षण संरचनाओं की परिकल्पना भर करें बल्कि इस संबंध में एक आंदोलन भी खड़ा करें। यह कब और कैसे होगा, इस पर विचार अवश्य करें।

व्यापक उद्देश्य के साथ जोड़ें व्यापक माध्यमों को

गहरे उद्देश्य और व्यापक दायरे के लिए 'औपचारिक' शिक्षा या संस्थानीय 'अनौपचारिक' शिक्षा का कार्य, उसके माध्यम या पाठ्यक्रम अधूरे और अपर्याप्त साबित होते हैं। इनकी सीमाओं

को समझने के लिए हमें सामान्यतया शिक्षा के क्षेत्र में न गिने जाने वाले, परंतु समाज की मानसिकता बनाने में प्रभावी अन्य माध्यम और प्रक्रियाओं की नाप-तोल करनी होगी। उनके व्यापक प्रभाव को समझने के पश्चात् ही हम उस माध्यम के द्वारा सामाजिक मूल्य, मुद्दे, परिवर्तनकारी कार्य की समझ बनाने के विशेष प्रयास का महत्त्व समझ पाएँगे। उसके लिए हमें हमारे तौर तरीके और शिक्षा विषयक समझ भी अधिक व्यापक और सबको साथ लेने वाली बनानी होगी। जागरूकता में वृद्धि करने वाले ऐसे सामाजिक प्रयासों को आज के दृश्य-श्रुत्य तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यमों से लेकर जाति, समाज तथा धर्म संप्रदाय द्वारा चलाए जा रहे कतिपय संकुचित, बंदिस्त, संकीर्ण कटिबद्धता के साथ काम करने वाली जाति पंचायतें या मदरसा जैसी संस्थाओं में भी खोजना होगा। इतना ही नहीं, कई राजनीतिक प्रक्रियाएँ, प्रचार-प्रसार के माध्यम और संस्थाएँ ही बड़े पैमाने पर समाज को प्रेरित और प्रभावित कर रही हैं। इसके अलावा इस क्षेत्र में जनआंदोलनों की एवं गैर-चुनावी जनसंगठनों की राजनीति की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इन सबमें हमारा हस्तक्षेप, चाहे वह संवाद के रूप में हो, संबंधित इलाके के भ्रमण के रूप में हो या मुद्दों पर बहस के रूप में तो कभी संघर्ष और चुनौती के माध्यम से हो, अपने किसी भी स्वरूप में यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस कार्य में हमें अपनी सोच की कट्टरता को समाप्त करना होगा और शिक्षा में खुलापन लाने की और उसमें राष्ट्रीय मूल्यों से लेकर मानवाधिकार तक की बातों को स्थान दिलाने की भरसक कोशिश किए

बिना हमें चुप नहीं बैठना चाहिए। सामाजिक माध्यमों को उनके सही अर्थों से नज़रअंदाज़ करके हम अपने उद्देश्य पूरे नहीं कर सकते।

विभिन्न माध्यमों की स्थिति तो हमारे सामने स्पष्ट है। पूँजी और बाजार के प्रभावों की बलि बनते जा रहे ये माध्यम समाज को 'उपभोक्ता' के रूप में देखकर ही अपना संदेश और क्रियाकलाप तय करते हैं। ये व्यक्तिवाद, स्पर्धा, व्यक्तिगत स्वार्थहित को ही सब कुछ मानकर व्यापार और उपभोग की मात्र शिक्षा ही नहीं बल्कि दीक्षा देते हैं। विश्वस्तर पर पहुँचाने की ख्वाहिश का निर्माण करते हुए ये स्थानीय सांस्कृतिक और प्राकृतिक विशेषताओं को ही क्या, इतिहास और भूगोल को भी कोई स्थान देना गैर-ज़रूरी समझते हैं। समाचार के ही मूल्य को अहम मानकर ये 'विचार' को दुर्लभ या निचला स्थान देने दिलवाने में कामयाब हो जाते हैं। इनकी सीख से कई युवा या बुजुर्गों को भी 'नयी शिक्षा' ही क्या 'नया जीवनदर्शन' प्राप्त होता है। लेकिन 'विज्ञापनों' माध्यमों में, विशेषतः मुख्य धारा के चैनलों में, जनसामान्य की प्राथमिकताओं के लिए स्थान ही नहीं है क्योंकि इससे उन्हें आर्थिक लाभ नहीं मिलता। परंतु हम इन परिस्थितियों से हार नहीं मानेंगे।

प्रिंट माध्यमों की भी ब्यौरेवार समीक्षा के द्वारा उनकी भूमिका और सीमा का आकलन ज़रूरी है। साथ ही एक चुनौती के रूप में इन माध्यमों पर लगातार दस्तक भर देना ही नहीं बल्कि घुसपैठ करने को चुनौती के रूप में स्वीकारना होगा। इसी के साथ वैकल्पिक माध्यमों का प्रचार और प्रभाव भी बढ़ाना होगा।

मुख्यधारा के माध्यमों में जगह बनाने का कार्य, उनके चरित्र को देखकर ही हताश होने से नहीं बल्कि मेहनत, लगन और सृजनशीलता से ही होगा। 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' का हमारा अनुभव बताता है कि भले ही हाथ में पूँजी और सत्ता न हो लेकिन अपनी खबर या सोच मीडिया तक पहुँचाने के लगातार प्रयासों से कुछ न कुछ हासिल तो ज़रूर होता ही है। कंप्यूटर और सुविधाओं के माध्यम से भी जो कार्य संस्थाएँ या व्यक्ति नहीं कर सकते, वह काम सामाजिक कार्यकर्ता नवाचार से संभव कर सकते हैं। इसके लिए विज्ञापन तैयार करने वाले कमर्शियल व्यावसायिकों से कहीं अधिक मेहनत की ज़रूरत होती है। मुझे याद आता है, 20 से 30 दिनों तक चले हमारे कार्यक्रमों में हर दिन नई खबर नए ढंग से पहुँचाने के लिए अभ्यास के साथ ही साथ विशेष कुशलता ज़रूरी होती थी। इस हेतु आवश्यक था कि ऐसी विज्ञप्ति तैयार की जाए जो केवल आकर्षक ही नहीं किंतु ठोस और नयी जानकारी पर आधारित हो और सबका ध्यान आकर्षित भी करे। इसी के समानांतर इसे नियमितता तथा तत्परता के साथ पहुँचाना भी एक महत्त्व का कार्य हुआ करता था। हम जब पुलिस के घेरे में शासकीय दमन के बीच, भूमिगत होकर रह रहे थे, तब भी मणिबेली जैसे पहाड़ी गाँव से सुबह चार बजे उठकर नदी पार करके कई कि.मी. पैदल चलकर जाने वाले कार्यकर्ता ही बाहर की दुनिया, समाचार माध्यम और व्यापक समाज तथा आंदोलन के बीच पुल बनकर रहते थे। कभी कॉलम लेखक तो कभी शोधकर्ता, तो कभी पत्रकारिता के विद्यार्थी भी हमारी बात इन समाचार

माध्यमों में प्रकाशित करवाने में कामयाब हो जाते थे। इस तरह हमने व्यापारी जगत के साथ समझौता न करते हुए भी वहाँ चल रही स्पर्धा के बावजूद अपने संघर्ष को उनके यहाँ स्थान दिलवाया।

यह बात भी सच है कि यह कितनी भी भयावह या अन्यायपूर्ण हकीकत हो, लेकिन मालिकों-मुनाफ़ाखोरों के दबाव में सामाजिक सरोकार की बातों को सोच समझकर दूर रखने की साज़िश समाजीकरण में बड़ा अवरोध पैदा करती है। बिल्डर्स और राजनीतिज्ञों के इन प्रचारक माध्यमों में निवेशक होने के नाते आभार, शहरी गरीबों के घरों या हकों पर चलने वाले बुलडोजर की खबर इन माध्यमों से प्रसारित नहीं होती। गरीबों के लिए लिखने वाले युवा पत्रकार को दबाने और डराने धमकाने तक की बातें प्रकाश में आई हैं। लेकिन लाखों लोगों के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संघर्ष को देखकर अचानक कई मुद्दे उभर आते हैं। उदाहरण के लिए मुंबई में एक साथ 75,000 झुग्गी-झोपड़ी गरीब घर कुचलने के विरुद्ध चले आंदोलन की खबर तब उठी जब हमारी संगठित महिलाओं ने उनकी ज़ामीन हड़पकर लगाई गई तार तोड़ी और उसी गंदी जगह पर अपना 'सत्याग्रह' शुरू किया। कहने का अर्थ यह है कि केवल माध्यमों को नज़र में रखकर की गई दिखावटी कार्यवाही भी काम नहीं देती। सच्ची लगन और कटिबद्धता के साथ, जान की बाजी लगाने वाली कार्यवाही ही माध्यमों को स्वमेव खींच लाती है। शासन और समाज पर प्रभाव-दबाव बनाने और उनके निर्णय सार्वजनिक हित में परिवर्तित कराना चाहने वाले सामाजिक कार्यकर्ता भी माध्यमों में स्वयं की उपस्थिति को ही 'उद्देश्य' का अथवा

साधनों को साध्य का दर्जा नहीं दे सकते। अगर ऐसा हुआ तो उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। कई बार कई मुद्दों को माध्यमों से पूर्ण लुप्त कर दिया जाना भी अपना असर लाता है, और अंततः वही महत्त्व की पूँजी बनती है। आखिर समाज में जागृति लाने के लिए केवल माध्यमों का साथ चाहने वाले, छोटे समूह में भी अपनी सामाजिक सोच पहुँचाने में पूरी ताकत और कुशलता लगती है। हम सब तो लाखों-करोड़ों तक प्रभाव बढ़ाने की महत्वाकांक्षा नहीं बल्कि एक-एक इंसान और समाज समूह को बदलने की तमन्ना रखते हैं। शिक्षा के समाजीकरण की इस तरह कई दायरों और स्तरों में बढ़ाने की कोशिश साथ ही साथ चलती रहती है।

वैकल्पिक माध्यमों की जितनी भी चर्चा की जाए उतनी कम है। 'मुख्य धारा' कई मायने में 'मुख्य' और 'व्यापक' नहीं होती है। समाज की बड़ी जनसँख्या, जिसमें जरूरतमंद तबका उसकी परिधि पर या उससे भी बाहर ही रहते हैं। इस विडंबना को जानकर हमें नए माध्यमों के निर्माण और समन्वय पर विचार करना ज़रूरी है। आज छोटे-छोटे समूह या संस्था द्वारा अपना बुलेटिन, मुखपत्र या पत्रिका भी निकाली जाती है। कहीं-कहीं तो ढेर सारा समय और पैसा खर्च करने के बावजूद उनकी पहुँच बहुत कम होती है। इन प्रयासों में समन्वय का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति या संस्था नया पत्र न निकालते हुए उपलब्ध पत्रिकाओं में से समविचारी कौन है यह चुनकर उसी में अपनी जगह बनाए और उसमें योगदान करे। साथ ही उपलब्ध विचार-साहित्य को विशेष दर्जा देने के लिए विचार को पुस्तक या प्रदर्शनी

के रूप में प्रस्तुत करना भी सहायक सिद्ध हो सकता है। इन माध्यमों पर जनशक्ति जुटाकर, इन पर चर्चा करना भी महत्वपूर्ण हो सकता है। 'स्लमडॉग मिलिओनेअर' जैसी फिल्म के ऑस्कर पुरस्कृत होने पर उसके दर्शन पर संगोष्ठियाँ, 'मुख्य' और 'विमुख' प्रवाहों को जोड़ने वाली हो सकती हैं, इससे सामाजिक शिक्षा के लिए 'स्लम' यानि शहर की गरीब बस्ती जैसा विषय—उसकी अनाधिकृतता, 'अतिक्रमण', 'गंदगी', 'गुंडागर्दी' या विरोधी छवि के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया जा सकता है। भूकंप या सुनामी के बाद पर्यावरण की, आतंकवादी हमले के बाद हिंसा और अहिंसावादी सोच, सूखा पड़ने पर जल नियोजन की, युद्ध के परिप्रेक्ष्य में *वसुधैव कुटुंबकम* की चर्चा जैसे विषयों को शिक्षा का हिस्सा बनाने के लिए हमारी तैयारी जरूरी है। मानव अधिकार या आवास पर या रोजी-रोटी में भी शिक्षा को केंद्र में रखते हुए कई *डॉक्युमेंट्रीज़* बनाने वाले आनंद पटवर्धन, सुमित्रा भाव, सागरी छाबड़ा, या महाविद्यालयीन शिक्षाक्रम में ये मुद्दे डालने के लिए कार्यरत देवकी जैन जैसे सामाजिक शिक्षाविद् विशेष योगदान के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। हमें भी यह कार्य करना होगा। इन माध्यमों में, न केवल संदेश ठोस देना होगा, बल्कि भाषा से लेकर भी स्पष्टता बनानी होगी।

हमारा लक्षित तबका दलितों, शोषितों, पीड़ितों का है। अतएव हमें उनके लिए एक ऐसी भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना होगा जो कि मात्र 'मान्यताप्राप्त' और अतिशुद्ध होने का दावा नहीं करती हो बल्कि ऐसी भाषा या बोली हो जो दिल को छू सके। आदिवासी बोलियों में

सामाजिक मुद्दों पर पर्चा निकालकर प्रत्येक जनसंगठन घर-घर तक उनकी बात पहुँचाने का प्रयास करता है। परंतु शहर के किसी भी महाविद्यालय में पहाड़ी, आदिवासी या आंचलिक बोलियों को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिए जाने से शहरी तबका इस प्रक्रिया का सदभागी नहीं बन पाता। हम सब ऐसा होता देखते रहते हैं। इस प्रक्रिया को बदलना होगा। भाषा की विविधता में जो ताकत है उसे तोड़-मरोड़कर, उसका विरोधकर किसी एक भाषा के एकाधिकार द्वारा 'एकता या एकात्मकता' लाने का मार्ग तलाशना हमारी बेबुनियादी सोच है। शिक्षाविदों का यह स्पष्ट अभिमत है कि अपनी मातृभाषा में ही जमीनी या मूलभूत भाषा में जड़मूल से विचारों का निर्माण होता है। भाषा का संबंध अपने परिवेश और जीवनदृष्टि से भी होता है, अतएव उसकी विविधता बनी रहने से ही वास्तविक लोकतांत्रिक और जनवादी शिक्षा संभव हो पाएगी। आनंद भारती जैसी संस्था ने विभिन्न भाषाओं में लिखे उत्कृष्ट साहित्य के अनुवाद का वृहद कार्य वर्षों से हाथ में ले रखा है, इसे भी इस दिशा में योगदान देने वाला कार्य समझा जाना चाहिए। परंतु शिक्षा के समाजीकरण के लिए इतना ही कार्य नहीं है बल्कि इस हेतु आवश्यक है कि साहित्य के साथ-साथ अन्य माध्यमों के प्रति भी हमारा खुलापन बढ़े और उसे जाति, धर्म, प्रांत या ऊँच-नीच से ऊपर उठकर देखें। इससे इस प्रक्रिया में सहायता मिलेगी। जन आंदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय की प्रक्रिया में हम अपने साहित्य का छः भाषाओं में अनुवाद करने के बाद सम्मेलन को सफलता

दिला पाए अथवा 'देश बचाओ—देश बनाओ' यात्रा को प्रत्येक राज्य तक पहुँचा पाए। दुर्भाग्य है कि नारे और प्रांतीय भाषा के चार वाक्यों से भी परहेज करने वाले, समय आने पर मजबूरी में ही सही विभिन्न भाषाओं के लिए अपने कान खोलते हैं और जल्दी ही स्थिति पलटती भी है। इसमें हम सबका संकल्प और ताकत भी कई गुणा बढ़ती है।

समाजीकरण से सामाजिक शिक्षा को चुनौती

मूल्यहीन बनी हमारी राजनीति आज भी समाज की सोच बनाने, बदलने में माहिर है। जब मैं राजनेताओं के शिक्षा संस्थानों की बात करती हूँ तो उससे मेरा आशय होता है मुद्दों और समस्याओं के 'राजनीतिकरण' से। फिर मुद्दा चाहे आतंकवाद का हो या किसानों की आत्महत्याओं का, राजनेता प्रत्येक मुद्दे का अपनी राजनीतिक अभिलाषा या स्वार्थ से आकलन करते हैं और इस प्रक्रिया में अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ भूल जाते हैं। इतना ही नहीं इनका एक समुदाय तो समता, बंधुत्व, स्वावलंबन और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के खिलाफ लोगों को भड़काने में लगा हुआ है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि संवेदनशील नागरिकों द्वारा ऐसी राजनीति की जबरदस्त भर्त्सना किए जाने के बावजूद राजनैतिक प्रचार-प्रसार समाज को बनाने या बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दुःखद बात यह है कि चुनाव के माहौल में इस मुद्दे पर कोई बहस या विवाद होता है तो हमारी अपनी बिरादरी के लोग एकजुट नहीं दिखते।

हमने देखा है कि प्रत्येक आतंकवादी हमले के बाद—चाहे वह संसद पर हो, चाहे 'ताज'

पर। चुनावी राजनीति युद्ध ज्वर फैलाने का कार्य करके वर्षों से समभाव पैदा करने वाली, शिक्षा, जनजागरण या संगठन के कार्य को पीछे धकेलती है। किसान जैसा फेंटा बाँधकर खड़े राजनेता किसान के योगदान को आर्थिक एवं राजनीतिक मंचों पर कोई स्थान ही नहीं देते। ऐसे में विविध सामाजिक प्रक्रियाओं, सरोकारों, संघर्षों से या फिर रचनात्मक कार्यों से समाज में दमित आकांक्षा, विषमता एवं भेदभाव को मिटाने के प्रति कटिबद्धता, विश्वास और ऊर्जा बनाए रखने के लिए 'सामाजिक शिक्षा' ही तो काम में आती है। यह भी जरूरी है कि सामाजिक शिक्षा में समाज में परिवर्तन लाने का स्वर निहित हो। इस महत्वाकांक्षा को केवल सपना न मानते हुए हमें कहीं न कहीं से शुरुआत तो करनी ही होगी। इस हेतु हम 'चुनाव सुधार' से लेकर ग्राम या बस्ती का अपने संसाधनों पर पहला अधिकार मानने वाले लोकतांत्रिक मुद्दे को सामाजिक बहस और विकास के नजरिए का मुद्दे बना सकते हैं। हमारे सामने ऐसे कई उदाहरण दिखते हैं जहाँ आम जनता ने एक दूसरे को पुकारा और राजनीतिक माहौल को चुनौती दी। तकनीकी विकास ने बाजार को बढ़ावा दिया है। मोबाइल-इंटरनेट तकनीक का उपयोग कहीं तो लाखों को इकट्ठा करने के लिए किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर इन माध्यमों का उपयोग इराक युद्ध के दौरान आतंक और हिंसा को नकारने के लिए एवं सामाजिक ला रहा है। यह भी संभव है कि इन प्रयासों में क्षणिकता और ऊपरी भावना के कारण विफलता आदान-प्रदान और जनशक्ति जुटाने के नए तौर-तरीके के रूप में भी सामने भी मिले लेकिन राजनीतिक प्रक्रियाओं में भी

ऊर्जा की कमी है। लगाई जाने वाली ऊर्जा में कई गुना वृद्धि होने से ऐसे प्रयास लंबा असर छोड़ते हैं। इसे भी राजनीति को चुनौती देने वाली 'सामाजिक शिक्षा' या सामाजिक जागरण की प्रक्रिया मानें तो आजादी, आंदोलन, 70 के दशक का नवनिर्माण आंदोलन से लेकर वर्तमान में नंदीग्राम, रायगढ़ या नर्मदा घाटी में चल रही अ-जनतांत्रिक, विनाशकारी विकास नीति के विरोध में चल रहे सतत् संघर्ष तक के अनुभवों के आधार पर हम अपनी बात को प्रामाणिकता दे सकते हैं।

शिक्षा—एक छोटा-सा शब्द है परंतु उसकी परिभाषा उद्देश्य, दायरा, माध्यम और प्रक्रियाओं में 'समाजीकरण' की दिशा में योगदान की चुनौती हमें सतत् कार्यरत रहने की प्रेरणा देती है। हम जो

भी करते हैं, उस कार्य को 'समाज और बंधन' का कार्य मानने से हमारी जिम्मेदारी बढ़ती है और हमें अपना कार्य भी अर्थपूर्ण लगता है फिर वह कार्य चाहे संघर्ष का हो या रचना का। भूमंडलीकरण और पूँजीवाद के इस विस्तारित माहौल में न केवल आर्थिक मंदी बल्कि मानवीय मूल्य, अधिकार और रिश्तों में आ रही गिरावट, प्रकृति के तापमान से लेकर सूखा, बाढ़ और भूचाल के रूप में उभरा विनाश और राजनीतिक खोखलापन हमें अधिक मजबूर कर रहा है कि हम हमारी जीवन संस्कृति और प्रकृति के प्रति अपनी सोच में परिवर्तन लाएँ और उस दिशा में आगे बढ़ने का सतत् प्रयास भी करें। अन्यथा हमें हमारे आज के युवा और बच्चे तथा आने वाली पीढ़ी भी माफ़ नहीं करेगी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्य एवं अध्यात्म शिक्षा की आवश्यकता

सुरेश्वर मेहेर*

सांप्रतिक संसार मानवीय मूल्यों की कमी के कारण अत्यन्त गंभीर संकट की स्थिति से गति होने के स्पष्ट लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं। पुनश्च मानव के पास अध्यात्म के विषय में सम्यक् अवबोध भी नहीं है जिससे वह अपना सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास साधित कर सके क्योंकि अध्यात्म ही मूल्यों को संवर्धित करने का एकमात्र सशक्त साधन है। प्राचीन काल की शिक्षा परंपरा में मूल्यों को समंवित कर आचार्य शिष्यों को शिक्षा प्रदान किया करते थे, परन्तु वर्तमान समय में मूल्यों के प्रति इतनी गंभीर अवहेलना प्रदर्शित की गई है कि उभरते छात्र व शिक्षक दोनों में चारित्रिक कलुषता स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रही है। एतत्सहित समाज में भी इसी नैतिक मूल्य भावजन्य चारित्रिक स्वलन के कारण अनेकानेक समस्याएँ दिन-प्रतिदिन दिखाई दे रही हैं। प्रस्तुत लेख के माध्यम से मूल्य व अध्यात्म शिक्षा के प्रति ध्यान आकर्षित कराने हेतु कुछ विचार प्रकट किये गए हैं जो अधुना समाज के लिए अत्यन्त प्रासंगिक व युक्तिसंगत प्रतीत हो रहे हैं तथा जिससे समाज को एक संतुलित व सुव्यवस्थित आयाम प्रदान करने की एक दृष्टि प्राप्त हो सके।

शिक्षा जगत् समाज एवं राष्ट्र के उत्कर्ष की आधार शिला है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। शिक्षा का लक्ष्य ही है चरित्र निर्माण। आज तक के सभी शिक्षा आयोगों ने भी शिक्षा में आध्यात्मिकता को एवं मूल्यों को

अनिवार्यता से स्वीकार किया है। महात्मा गाँधी ने शिक्षा के लिए व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता को सबसे बड़ी शर्त माना था। कवींद्र रवींद्रनाथ और डॉ. राधाकृष्ण ने भी घोषणा की थी कि आध्यात्मिक पुनरुत्थान के बिना वैज्ञानिक उपलब्धियाँ विनाश का कारण बनेंगी। आज यही संघटित हो रहा है।

सत्य, प्रेम तथा अच्छाई के मार्ग की बाधाओं को पार करने का सामर्थ्य एक मात्र विशुद्ध आध्यात्मिकता से संपन्न मूल्यनिष्ठ जीवन ही प्रदान कर सकता है। आज विशुद्ध आध्यात्मिकता को समझने और आत्मसात करने की शक्ति, तैयारी और समय प्रायः दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है, क्योंकि आज का मानव आत्मा और शरीर का संबंध और उसकी सार्थकता को नहीं समझ पा रहा है।

इसी कारण लक्ष्य विहिनता है, अज्ञान जनित भौतिक दौड़ की आँधी में अनीति, भ्रष्टाचार एवं नैतिक चारित्रिक पतन के चक्रवाह में वास्तविक जीवनधारा चुकती जा रही है। आज की शिक्षा जीवन के डाल पात से शरीर व शरीर के संबंधों तक सीमित है। वस्तुतः जीवन का असली राज शरीर से विपरीत जीवन जड़ों में है—शरीर से भिन्न आत्मा और उसकी अनंत शक्तियों में है। सत्य भीतर है, जीवन की क्षमताएँ, सुगंध तो भीतर है, बाहर तो मात्र प्रतिछाया है। प्रकृति के तत्वों में भी अपनी नैसर्गिक गरिमा-सौन्दर्य है—फूल में सुगंध, कोमलता, स्निग्धता, रंग और सौन्दर्य है। मानव का सौंदर्य खो गया है। कारण पाश्चात्य सभ्यता और दूषित वातावरण का प्रभाव है। आज की शिक्षा में प्रतियोगिता है, द्वेष है, भय है। अतः आज के मानव का व्यक्तित्व खंडित व्यक्तित्व है। उसमें उदारता, सहयोग, धैर्य और त्याग नहीं है। आज की शिक्षा एटम (अणु) की शिक्षा है, आतम (आत्मा) की नहीं। आज की शिक्षा में अहंकार का पोषण है, देह-अभिमान है। मान-शान, धन-सत्ता के पीछे दौड़ है जिसमें चारित्रिक गुणों का कोई स्थान नहीं है।

इसके लिए उदारमना, आत्मस्थ व्यक्तियों को चिंतन कर अविलम्ब समाधान ढूँढना है। जीवन की पूर्णता का अर्थ है—भौतिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की संपन्नतापूर्ण समन्विति। समस्त मूल्यों का स्रोत मानवोपरि, अलौकिक सत्तारूप एक परमात्मा ही है। अतः उसे जानकर उससे अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करने के लिए मानवीय गरीमा की प्रतिष्ठा और आत्मवाद की पुनः प्रतिष्ठा ही यथार्थ जीवन मूल्य है, जो आसन संकट से मानवता की रक्षा कर सकता है।

21वीं शताब्दी में स्वर्णिम भारत के उदय की आधार शीला ऐसी ही मूल्य शिक्षा है। आज की शिक्षा मानव मूल्यों को छोड़, सब कुछ दे रही है। मूल्य नहीं तो मानवता नहीं, चरित्र नहीं, मानव की आन और शान नहीं। कोई भी राष्ट्र जनबल और धनबल से महान नहीं बनता। उसके लिए चरित्रबल ही चाहिए। इसी के अभाव में आज व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पूर्ण रूपेण विकसित, सुखी, समृद्ध नहीं हो पा रहे हैं। व्यक्ति और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में जीवन मूल्यों और चरित्र की सुवास फैलानी है, समग्र राष्ट्र और विश्व में नई चेतना, नया विश्वास, नई आशा और नई उम्मीदों की लहलहाती फसलें तैयार करनी है, तो आज शिक्षा के क्षेत्रों को ही आगे आ कर आत्मवाद और परमात्मवाद से निष्पन्न जीवन मूल्यों की प्रयोगशालाएँ सर्वत्र खोलनी पड़ेंगीं। अगर आज मानव को झकझोर कर जगाया नहीं गया तो अहंकार, क्रोध, स्वार्थ, लिप्सा और मोहांधता पूरी मानवता का विनाश करने के लिए समक्ष है।

मूल्य की अवधारणा

- (क) 'मूल्य' धर्म एवं दर्शन के उद्देश्य को प्रतिबिंबित करते हैं—जिनका लक्ष्य है लोगों को बेहतर जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन देना। मूल्य जीवन की सुंदरता एवं वरदान हैं। ये सभ्यता के आवश्यक तत्त्व तथा हमारे चरित्र के द्योतक हैं। हमारी श्रेष्ठ नैतिकता का निर्धारण मूल्यों के द्वारा ही होता है।
- (ख) 'मूल्य' जीवन की अमूल्य निधि है जो हमें संपन्न बनाते हैं। इनसे आत्मा-परमात्मा के निकट आने के योग्य बन जाती है और जीवन वास्तविक तथा सार्थक बन जाता है। मूल्य हमें निर्बंधन तथा स्वावलंबी बनाते हैं एवं बाहरी समस्याओं से हमारी रक्षा करते हैं।
- (ग) 'मूल्य' मनुष्य के सिद्धांत अथवा व्यवहार के स्तर हैं। जीवन में क्या महत्त्वपूर्ण है इस बारे में मनुष्य का निर्णय 'मूल्य' कहलाता है। मूल्य जीवन में स्वतः लागू किये गए नियम अथवा वे आचार संहिताएँ हैं जो जीवन यात्रा को स्वच्छ विवेक के साथ संपन्न करने के लिए लागू किये जाते हैं। सभी श्रेष्ठ मूल्य (सत्यता, प्रेम, सहयोग, शांति, दया, विनम्रता इत्यादि) हमारे मन, विचारों एवं आध्यात्मिक स्वरूप में निहित होते हैं, न कि हमारे भौतिक स्वरूप में।

मूल्य एवं आध्यात्म

मूल्य एवं आध्यात्मिकता न सिर्फ मानव सभ्यता के केंद्र हैं बल्कि मनुष्यों द्वारा निर्मित अपने सभी

वैध प्रतिष्ठानों तथा उनके नैतिक दर्शनों के भी केंद्र हैं। परंपरागत रूप से मूल्यों एवं आध्यात्मिकता को धर्म की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी माना जाता रहा है। मूल्य एवं आध्यात्मिकता को पारिवारिक इकाई का भी मूल तत्त्व माना जाता है। फिर भी विगत 2500 वर्षों से सभी महान एवं सामान्य सभ्यताएँ मनुष्य की कमियों, कमजोरियों के निवारण को लेकर चिंताग्रस्त रही हैं। कुछ महान विभूतियों की बात अगर छोड़ दें तो सामूहिक रूप से हम सभी लोग अपने मूल्यों एवं नैतिक सिद्धांतों का पालन नहीं कर पाए। यही कारण है कि लम्बे समय से धीरे-धीरे इन मूल्यों का हास होता जा रहा है और आज भी हम मूल्य हास के दौर से गुजर रहे हैं।

वर्तमान परिवेश में पारम्परिक शिक्षा विद्यार्थियों में विशिष्ट मानसिक दक्षताओं और ज्ञान का ही विकास करती है। इससे वे केवल अपनी जीविका कमाने के ही योग्य बनते हैं। वर्तमान समय में प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र हो गई है कि छात्रों के समक्ष उच्च शिक्षा के चयन की मजबूरी रहती है और इसके लिए वे अपने मूल्यों, अपनी संस्कृति, एकता, सत्यनिष्ठा एवं अन्य मानसिक दक्षताओं की बलि देते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन मूल्यों के द्वारा ही जीवन सुखी बनता है। इसके द्वारा ही एक विशिष्ट पुरुष अथवा स्त्री का निर्माण होता है जो सभ्य समाज के नवनिर्माण में गुणात्मक भूमिका का निर्वहन करने के योग्य बनते हैं।

जब कोई युवक अपने शिक्षण संस्थान से डिग्री प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर लेता है तब उसमें आर्थिक रूप से समृद्ध रोजगार प्राप्त करने की योग्यता का होना एक महत्त्वपूर्ण बात

है। परिवार में, समाज में व कार्यस्थल में सामाजिक चुनौतियों व परेशानियों का सामना करने के लिए तथा जीवन की अन्य आकाँक्षाओं की पूर्ति हेतु उसे अन्य अनेक बातों की भी आवश्यकता है। अगर व्यक्ति को अपने चरित्र के उत्थान, आंतरिक शक्तियों के विकास तथा निर्णय शक्ति के विकास का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है तो निश्चय ही वह सामाजिक व व्यवसायिक स्तर पर पिछड़ जाता है। जब तक व्यक्ति अपने जीवन के मूल्यों एवं अपनी प्राथमिकताओं का निर्धारण नहीं करता एवं अपने लिए कोई आचार संहिता नहीं बनाता, तब तक वह भविष्य में आने वाली परीक्षाओं से मुकाबला करने में सफल नहीं हो सकता।

स्वामी विवेकानंद ने एक बार शिक्षण की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की थी—

“शिक्षण मनुष्य के अंदर उपस्थित पूर्णता का प्रदर्शन है।”

‘पूर्णता’ शब्द का प्रयोग करके उन्होंने सर्व का ध्यान मनुष्य के अंदर छिपी दिव्यता की ओर आकर्षित किया था। उनकी व्याख्या के अनुसार—

“वही शिक्षण संस्थान सही अर्थों में शिक्षण संस्थान है जो मनुष्य का ध्यान प्रकृति द्वारा निर्मित विशाल संसार की अपेक्षा उसके अंतर्मन की ओर आकर्षित करता है।”

आध्यात्मिक विशेषज्ञता का विकास एवं जीवन में मूल्यों की धारणा का लक्ष्य सर्वोत्तम प्रयास कहा जा सकता है। इस प्रयास का लाभ जीवन पर्यन्त व्यक्ति के साथ-साथ रहता है। बेहतर भविष्य के निर्माण के लिए समर्पित एक प्रेरक दर्शन एवं किसी वैश्विक मूल्य के प्रति निष्ठावान व्यक्तियों का एक छोटा-सा संगठन भी बेहतर

दुनियाँ की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर सकने में सक्षम होता है।

मूल्य शिक्षा का लक्ष्य है, पारम्परिक शिक्षण का पूरक बन कर उससे आवश्यक सूचनाएँ एवं कौशल प्राप्त करना। इसके अभाव में व्यक्ति को भौतिक, भावानात्मक, सामाजिक व आध्यात्मिक जीवन में सफलता पाने की सम्भावनाएँ अत्यंत सीमित हो जाती है।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता के संदर्भ में निम्नलिखित कुछ महानुभावों के प्रमुख विचार—

(क) मूल्य शिक्षा की अवहेलना करना भयंकर आपदा को निमंत्रण देने जैसा है। अगर मूल्य शिक्षा के लिए अभी उचित कदम नहीं उठाये गए तो जल्दी ही सभ्य समाज जंगल के कानून द्वारा संचालित किये जाएँगे। (ब्रह्माकुमार जगदीश चंद्र हसीजा)

(ख) आज के इस कौतूक भरे कंप्यूटर संसार में रहते हुए भी जीवन को उद्देश्यपूर्ण एवं सार्थक बनाने के लिए हमें आध्यात्मिक मूल्यों को फिर से धारण करना अति आवश्यक है। (डॉ. के. चिदानंद गौड़ा)

(ग) संपूर्ण संसार मूल्यों के हास के भयंकर दौर से गुजर रहा है। घातक हथियारों, नशीले पदार्थों एवं देह व्यापार जैसे तीन प्रकार के व्यापारों ने समाज की गति को रोक लिया है। यह एक अत्यंत ही हानिकारक स्थिति है। मूल्य हास की इस स्थिति से निकलने के लिए वर्तमान पीढ़ी को आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देना अत्यंत आवश्यक है। (मोहम्मद बशीर)

विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं समितियों के निष्कर्ष

आज पूरा विश्व मूल्यों के भयंकर संकट के दौर से गुजर रहा है। आजादी के बाद से ही सरकार ने कई प्रकार के आयोगों एवं समितियों का गठन शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के लिए किया। इन आयोगों एवं समितियों ने सत्य, शांति, प्रेम, न्याय एवं सहयोग जैसे वैश्विक मूल्यों एवं मानवीय मूल्यों को जीवन में धारण करने की बात कही है। यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र का शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन) ने जैक्यूस डेलोर्स की अध्यक्षता में अंतर्राष्ट्रीय आयोग का गठन किया। इस आयोग में पूरी दुनियाँ के शिक्षाशास्त्रियों को शामिल किया।

डेलोर्स की रिपोर्ट ने शिक्षा के 4 स्तम्भों की जानकारी दी—

- (क) जानने के लिए शिक्षा
- (ख) करने के लिए शिक्षा
- (ग) बनने के लिए शिक्षा
- (घ) एक साथ जीने के लिए शिक्षा

प्रथम के लिए शैक्षणिक योग्यता आवश्यक है। द्वितीय के लिए कार्यकुशलता आवश्यक है। जबकि तृतीय एवं चतुर्थ के लिए मूल्यों की अवधारणा आवश्यक है।

निम्नोक्त कुछ मुख्य कारण हैं जिनके लिए मूल्य शिक्षा की महति आवश्यकता है—

- भ्रष्टाचार एवं अनैतिक कार्य,
- मूल्यविहीन विज्ञान एवं तकनीक,
- हिंसा का बढ़ता प्रयोग,
- मादक द्रव्यों का बढ़ता हुआ प्रयोग,

- प्रत्येक शैक्षिक स्तर पर मूल्य शिक्षा का अभाव,
- लोक कथाओं द्वारा अपमूल्यन।

मूल्य शिक्षा का प्रभाव

1. व्यक्तिगत प्रभाव

मूल्य एवं आध्यात्मिकता की शिक्षा व्यक्तित्व को निखारती है। आंतरिक सशक्तिकरण कर इच्छाओं को कम करके उपभोक्तावाद की आँधी को समाप्त करती है। परिणामस्वरूप मूल्यनिष्ठ जीवनशैली की सरलता के कारण वह अत्यधिक खर्च करने से बच जाता है और अनुचित एवं बेईमानी से अपने आय के स्रोतों को बढ़ाने का प्रलोभन भी उसके मन में घर नहीं कर पाता। एक ईमानदारी व्यक्ति अंदर और बाहर एक समान ही होता है जिससे उसका एक उज्ज्वल चरित्र समाज में प्रतिष्ठित होता है एवं वह सभी का प्रिय पात्र बनता है।

2. सामाजिक प्रभाव

संचार के विभिन्न चैनलों द्वारा प्रसारित मूल्य शिक्षा यह दावा करती है कि उसने हर उम्र के लोगों एवं समाज के प्रत्येक समूहों को इस शिक्षा के माध्यम से इतना जागरूक एवं कुशल बना दिया है कि वे गलत कार्यों में संलग्न होने के किसी भी दबाव का मुकाबला कर सकते हैं। जब हर स्तर की शिक्षा में मूल्य शिक्षा का समावेश कर दिया जाता है और स्त्री एवं पुरुष को समान रूप से दिया जाता है तो लोगों को यह सभ्य नागरिक जीवन जीने के योग्य बना देती है, तब मूल्यों को जीवन में धारण करने वाले व्यक्ति सामाजिक जीवन व्यवस्था में अधिक गहराई तक प्रविष्ट कुप्रवृत्तियों, भ्रष्टाचार, घूसखोरी तथा

भाई-भतिजावाद जैसी बुराईयों, महिलाओं, बच्चों एवं पिछड़ी जाति के लोगों के साथ होने वाले भेदभावों को समाप्त करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। ऐसी श्रेष्ठ वृत्तियों के कारण समाज के सर्वाधिक विपन्न लोगों के भी आत्मसम्मान जागृत हो जायेंगे और वे अपनी प्रतिष्ठा तथा स्वमान की रक्षा कर सकेंगे।

ऐसी स्थिति में लोग मूल्यों के प्रति स्वाभाविक रूप से संवेदनशील बनते हैं तथा वे सहज ढंग से पर्यावरण की रक्षा के लिए तत्पर भी होते हैं। मूल्य शिक्षा मनुष्य के अंदर मूल्यों के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित करती है। मूल्य शिक्षा लोगों को आन्तरिक रूप से इतनी शक्तिशाली बना देती है कि वे मन, वचन एवं कर्म से लालच, स्वार्थ एवं हिंसा की भावना का प्रतिकार करने में समर्थ हो जाते हैं। मूल्य शिक्षा के बेहतर प्रसारण की व्यवस्था द्वारा लोगों को जुआ, विभिन्न व्यसनों एवं ड्रग्स के प्रयोग के खतरों की जानकारी दी जा सकती है। मानवीय, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से संपन्न समाज प्रबुद्ध एवं संवेदनशील लोगों को भी मूल्य की शिक्षा द्वारा प्रेरित किया जा सकता है।

शिक्षा में मूल्य

मूल्यों के बिना कोई भी शैक्षणिक संस्थान अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता है। हर उम्र के विद्यार्थियों को मूल्यों की शिक्षा उनके विद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल सामग्रियों, विद्यालय की नीतियों एवं कार्यक्रमों द्वारा प्रदान करना आवश्यक है। मूल्य रहित शिक्षा जैसी कोई चीज नहीं होती है। विद्यालय प्रतिदिन मूल्यों की शिक्षा देते हैं परंतु

प्रश्न है कि किन मूल्यों की? भारत में शिक्षा भिन्न-भिन्न काल में अनेक धार्मिक एवं राजनीतिक सत्ताओं के प्रभाव में रही है। ये प्रभावशाली प्राधिकार हैं—हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, जैन तथा ईसाई धर्म, अँग्रेजी उपनिवेशवाद, बुद्धिजीवी एवं इतिहासकार आदि। इन सभी ने अपने आदर्शों एवं मूल्यों को स्थापित करने का प्रयत्न करने का प्रयत्न किया। इन सभी का उद्देश्य था कि वे अपने मूल्यों को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाएँ। इन विभिन्न प्रभावशाली सत्ताओं के कारण ही आज भारतवर्ष बहु-संस्कृति प्रधान समाज बन गया है।

21वीं सदी के प्रारम्भ में आज दुनियाँ में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी प्रभावशाली सत्ताएँ हैं। सूचना तकनीकी में विशिष्ट ज्ञान के आधार पर भारत वर्ष आज दुनियाँ के नक्शे पर अपनी अलग पहचान बनाने के पथ पर निरंतर अग्रसर है। भारतवर्ष के विभिन्न इंजीनियरिंग कॉलेजों के साइबर अभियांत्रिकी के कुशाग्र एवं प्रतिभाशाली अभियन्ता भारत को एक नई पहचान दे रहे हैं। तथापि भौतिकता आधारित इस तकनीकी प्रगति को ही मानवीय तथा वैश्विक मूल्यों के पतन का जिम्मेवार भी माना जा रहा है।

अगर तकनीकी एवं मूल्यों के विकास के बीच कोई संबंध स्थापित होता तो हम पाते कि इस देश में मूल्यों की धारणा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण विकास हो रहा है, किन्तु ऐसी स्थिति नहीं है। भौतिकवाद के उदय के साथ-साथ हम देख रहे हैं कि दुश्चिंताओं एवं असंतोष में वृद्धि खुशियों की अपेक्षा अत्यन्त तीव्र गति से हो रही है। अहंकार, क्रोध, हिंसा तथा पतनोंमुख शिक्षा का तेजी से प्रसार हो रहा है। मानव के सर्वांगीण

विकास की कीमत पर आज की शिक्षा लोगों को आपसी प्रतिस्पर्धा के लिए ही प्रेरित कर रही है।

शिक्षा का पहला कर्तव्य है ज्ञान की खोज एवं उसका प्रसार करना। परन्तु शिक्षा ऐसी हो जो विधि-विधान की जानकारी प्राप्त कराए तथा युवाओं के संवाद संप्रेषण की क्षमता का इस प्रकार विकास करे कि वे तेजी से बदल रहे इस प्रतियोगितावादी एवं परिवर्तनशील दुनियाँ के लायक स्वयं को बना सकें। शिक्षा जीवन की एक अनिवार्य संपत्ति है क्योंकि यह शांति, स्वतंत्रता व न्याय दिलाती है। यह गरीबी, अज्ञानता, अत्याचार, युद्ध एवं शोषण को समाप्त करने वाली शक्तियों में प्रमुख शक्ति है।

शिक्षा का लक्ष्य

- (क) मावन जीवन में परिवर्तन लाना।
- (ख) सर्वांगीण विकास हो (शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, भावात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक) केवल 3-R (Reading, Writing and Recitation) की शिक्षा नहीं।

मानसिक व्यक्तित्व विकास

नकारात्मक संकल्पों को सकारात्मक संकल्पों में, व्यर्थ संकल्पों को समर्थ संकल्पों में परिवर्तन करना ही मानसिक व्यक्तित्व विकास है। आजकल की शिक्षा प्रणाली में स्मरण शक्तिवर्धन को ही मानसिक व्यक्तित्व विकास समझा जाता है। मानसिक व्यक्तित्व विकास के लिए वास्तव में एकाग्रता, मौन, ध्यान व योग की आवश्यकता होती है। मन को प्रशांत करना अनिवार्य है।

मानसिक व्यक्तित्व विकास होने से व्यक्ति संतुष्ट रहेगा, प्रतिकूल परिस्थितियों का, विरोधों का समर्थ रीति से सामना करेगा, नवीनता को अपनाएगा।

भावनात्मक व्यक्तित्व विकास

जो विचार इंद्रियों के द्वारा व्यक्त करते हैं, उसे भावना कहते हैं। उदाहरण—खुशी, शांति, आनंद, क्रोध, द्वेष इत्यादि। हम भावनाओं को तौल नहीं सकते हैं, केवल महसूस कर सकते हैं। आज मानवीय संबंधों में विश्वास, सहयोग, सद्भावना, स्नेह नहीं रहा है। व्यक्ति स्व-उन्नति को भूलता जा रहा है। कमजोरियों का निर्मूलन करने के लिए कमजोरियों की महसूसता, परिवर्तन की विधि चाहिए। तब सहज ही हमारा दुर्व्यवहार सद्व्यवहार में बदल जाएगा। विश्व में भाईचारा और एकता स्थापित होगी।

बौद्धिक व्यक्तित्व विकास

वर्तमान शिक्षा से व्यक्ति में नकारात्मकता और विनाशकारी शक्तियाँ आ रही हैं। मानवकुल का नाश करने के लिए आण्विक अस्त्रों-शस्त्रों के निर्माण में व्यक्ति व्यस्त है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि जब-जब मानव ने शस्त्रों का सहारा लिया है, तब-तब रक्तरंजित क्रांति हुई है। फिर अणु अस्त्रों का निर्माण ही क्यों? व्यक्ति बुद्धिमान होते हुए भी स्वयं विनाश की तैयारियाँ कर रहा है। वास्तव में बुद्धि का विकास सकारात्मक होना चाहिए तथा सृजनात्मक, श्रेष्ठ समाज के लिए नवनिर्माण में होना चाहिए।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व विकास

अध्यात्म अर्थात् आत्मा का अध्ययन तथा आत्मा की अनुभूति करना। अपने आध्यात्मिक अस्तित्व

की पहचान आवश्यक है। जिससे आत्मशक्ति, आत्मसंतुलन, आत्मसंयम, आत्मबल प्राप्त होता है। मूल्यों के हास के कारण शांति, आनंद, प्रेम बाहर ढूँढ़े जा रहे हैं। आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकासित स्वरूप ही मूल्यनिष्ठ जीवन है। इसलिए महान दार्शनिक सॉक्रेटिस ने कहा है- "To know thyself is education".

वर्तमान परिदृश्य

- जीवन केवल रोटी, कपड़ा, मकान और वैभवों के लिए हो गया है। जानकारी अथवा सूचना ही शिक्षा अथवा ज्ञान हो गई है। विवेक सूचना रूपी शिक्षा में ही लिप्त हो गया है। *तमसो मा ज्योतिर्गमय*। अंधकार का विनाश और ज्ञान का विस्तार। अहंकार, क्रोध, मोह, काम, कामनाएँ आदि विकृतियाँ ही अज्ञान रूप हैं। फलस्वरूप अशांति, दुःख, तनाव का प्रादुर्भाव हो रहा है।
- सा विद्या या विमुक्तये। जो बंधन से मुक्ति दिलाती है वही विद्या है। अज्ञान से ज्ञान की ओर हमें ले चलो। विकृति से संस्कृति की ओर हमारी यात्रा हो। रोग, शोक, दुःख, अशांति के बंधन से हमें मुक्त करे। जो हमें प्रज्ञा दे, वह विद्या है। अंदर की आँखें खोलो। *ज्ञानं तृतीय नेत्रम्*। जिसमें प्रज्ञा है वह स्थितप्रज्ञ है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताए हैं—जो सुख-दुःख, हर्ष-शोक, जय-पराजय इत्यादि द्वंद्वों में हर परिस्थिति में समान रूप से (स्थिर)—सम्यक् भाव से रहता है उसकी प्रज्ञा स्थिर है अतः गीता शिक्षा का ग्रंथ है,

महान ग्रंथ है। जीवन की राहों में चलते-चलते जो परेशानियाँ आती हैं, मुसीबत के पहाड़ आते हैं, काँटों के जंगल आते हैं, व्यथा वेदना-निराशा-संताप के तूफान आते हैं—कोई सहारा, कोई आशा की किरण न मिले, ऐसी परिस्थिति में से जो पार कराये वही विद्या है।

- हम परेशान क्यों हैं? किन बातों से हैं? हमारी नकारात्मक श्रृंखलाओं से (Illusion, Delusion and Confusion) भ्रांतियाँ, मिथ्या मान्यताएँ और उलझी हुई बुद्धि के कारण। हमारी अनन्त इच्छाओं और अपेक्षाओं के कारण। हम स्पर्धा की धुन में उलझ गए हैं अतः तनावयुक्त (टेंशन) में रहते हैं। हम सदा एक दूसरे को देखते हैं, तुलना करते हैं। अतः ईर्ष्या, निंदा, घृणा, विरोध, वैमनस्य, संघर्ष में जल्दी फँस जाते हैं। हमारी वृत्तियाँ हमारे वश न होने के कारण अहंकार, क्रोध, मोह, काम, कामनाओं, वहम् और पूर्वाग्रहों में हमारी बुद्धि बंद हो जाती है इन सबसे मुक्ति चाहिए—यह कार्य विद्या का है। सा विद्या या विमुक्तये, विद्या ददाति विनयम्। परिपक्वता, ज्ञान या शिक्षा से आती है। जैसे पका हुआ फल मधुर होता है वैसे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास या परिपक्वता अर्थात् प्रसन्नता, मधुरता, सौहाद्रता, सहनशीलता, सेवा, परोपकारिता इत्यादि मूल्यों का जीवन व्यवहार में आना।

वर्तमान काल की मूल्यसंपन्न जीवन प्रणाली

प्राचीन काल में गुरुकुल प्रणाली थी। गुरु का स्थान माता-पिता और राजा से भी ऊँचा था। उस

प्रणाली से व्यक्ति और समग्र समाज की जीवन व्यवस्था में मूल्यों का आधिपत्य था। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, नीतिमत्ता, शांति, परस्पर स्नेह और सेवाभाव जीवन के केंद्र स्थान में थे। राजा-प्रजा-साहूकार सबके जीवन में संतोष रूपी धन था। विरोध-वैमनस्य, अशांति, परिग्रह, व्यथा-वेदना, रोग-शोक का आधिपत्य नहीं था। चारित्रिक धन था। शांति, प्रेम, आनंद, संवादिता, समृद्धि थी। संतुष्टता लक्ष्मी के समान थी। अभी जीवन का केंद्र बिंदु पैसा बन गया है।

गुरु राजविद्या, व्यवहार विद्या, ज्योतिष विद्या, शस्त्र विद्या के सिखाने से पूर्व ध्यान, प्रार्थना, मौन, त्याग, तपस्या, सेवा, समानता इत्यादि मूल्यों की शिक्षा देते थे। राजकुमार और सामान्य ब्राह्मण बालक (कृष्ण-सुदामा) की परवरिश समानता से होती थी। गुरु के आगमन पर राजा उठकर आतिथ्यभाव से नमन करता था। उदाहरण—वशिष्ठ, विश्वामित्र, व्यास आदि। वे अध्यात्म विद्या द्वारा जीवन मूल्यों का आत्मसात् कराते थे। उदाहरण—सत्यं वद, धर्मं चर। रामायण-महाभारत में मूल्य संपन्न जीवन का वर्णन प्राप्त होता है। उस समय के समग्र में मूल्यों की विजय और मूल्यहीन व्यक्तियों का नाश बताया गया है।

- राजा विक्रमादित्य की उदारता, प्रजावत्सलता, सेवाभाव।
- चाणक्य द्वारा राजसत्ता की स्थापना।
- केवल एक ही कलिंग देश पर विजय पाने के बाद राजा अशोक का पश्चाताप और बौद्ध धर्म स्वीकार करना।
- विवेकानंद की प्रतिभा स्वामी रामकृष्ण की छाया में आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा प्रस्फुटित हुई।

- महर्षि अरविंद, महात्मा गाँधी, रवींद्रनाथ टैगोर आदि महान विभूतियों ने मूल्य शिक्षा का स्रोत आध्यात्मिकता को ही बताया है। सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) और महावीर दोनों राजकुमारों द्वारा लोक कल्याणार्थ गृह त्याग। त्याग-तपस्या-करुणा-सेवा के उत्कृष्ट मूल्यों का सृजन आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा। ध्यान, तप, मौन, चिंतन, सेवा, सुश्रुषा, क्षमा तथा करुणामय जीवन द्वारा।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली

- वर्तमान शिक्षा प्रणाली विदेशी शासकों की देन है। मैकॉले ने अँग्रेजी शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए, क्लर्क पैदा करने की शिक्षा पद्धति अपनाई, जिसमें परिवर्तन लाने के अथक प्रयास किए जा रहे हैं।
- आजादी के बाद राधाकृष्णन् कमीशन, कोठारी कमीशन शिक्षानीति इत्यादि द्वारा नैतिक शिक्षा और योग के लिए अनेक सुझाव दिए गये हैं। करोड़ों रुपयों का खर्च होने के बावजूद भी शिक्षा प्रणाली से चरित्रवान, आत्मविश्वास सभर, मूल्यवान व्यक्तित्व वाली युवा पीढ़ी नहीं उभर पाई है।
- एक यूनिवर्सिटी से प्रतिवर्ष 10 हजार, 15 हजार या 20 हजार स्नातक-अनुस्नातक इंजीनियर्स, डॉक्टर्स, लॉयर्स, टीचर्स, प्रोफेसर्स या प्रोफेशनल्स जैसे— बी.बी.ए., एम.बी.ए., आई.आई.एम. इत्यादि डिग्रीधारक पैदा होकर निकलते हैं, परंतु इनके व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं जैसे दूसरों की कमाई का सरोकार, जैंडर सरोकार इत्यादि के जाँचे जाने की सुदृढ़ व्यवस्था नहीं है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली का

डिग्री और नौकरी से संबंध जुड़ गया है। जीवन के मूल्यों से कोई संबंध नहीं रहा है।

- हमारी संस्कृति के सत्व को आज की शिक्षा ने भूला दिया है। सनातन धर्म, वैदिक संस्कृति और अध्यात्म विद्या, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद, खगोल विद्या, भू-परीक्षण विद्या, शिल्प-स्थापत्य, संगीत-नृत्य आदि कलाओं को और शुद्ध, स्नेहयुक्त, सुसंवादी पारिवारिक एवं समाज व्यवस्था आदि प्राचीन विरासत से हमने मुँह मोड़ लिया है और उसकी जगह पाश्चात्य भोग-विलासमय, मर्यादाहीन संस्कृति को अपना बना लिया है। फिल्म, टी.वी. और साहित्य में पाश्चात्य भोग-प्रधान संस्कृति से पूर्ण दृश्यों का आकंठपान करने में नई पीढ़ी डूबी ही है।
- अनास्था, आत्मगौरवहीनता, अमर्यादा और भौतिक वासनाओं में डूबी युवा पीढ़ी गुमराह है। इसे सही दिशा दिखाने का अधिकार एक मात्र शिक्षा क्षेत्र को ही है। शिक्षक मार्गदर्शक हो सकता है। परिवर्तन की लहर का ध्वज बन सकता है। हमारी प्राचीन गौरवपूर्ण जीवन प्रणाली की ओर दृष्टिपात कराकर सोई हुई चेतनाओं को जगा सकता है। आशाओं का दीप जला सकता है।
- आज की शिक्षा प्रणाली की मर्यादा (कमी) बताते हुए भारत के सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् स्व. गर्वनर श्रीप्रकाश जी ने कहा था—

“आज की युवा पीढ़ी के लिए देश या शिक्षा के पास कोई प्रेरणादायी ध्येय नहीं है। इसलिए आज की पीढ़ी हताश और दिशाविहिन है। 1947 के पहले महात्मा गाँधी जी ने समूचे देश को आजादी का ध्येय दिया था और साथ-साथ वे राहबर

भी बने थे। आज कोई मूल्यवान नेतृत्व नहीं है”।

- अगर कहीं आशा की चिनगारी नज़र आती है तो वह कार्य विद्यालय/महाविद्यालय/ विश्वविद्यालय में हो सकता है उन्हें जगाने की आवश्यकता है। उनकी क्षमताओं को उजागर करने से ही हम जीवन मूल्यों को फिर से उत्थान की ओर ले जा पाएंगे।
- वर्तमान शिक्षा में आध्यात्मिक और मूल्य शिक्षा की अनुपस्थिति की यही विलुप्त कड़ी है। कविवर रविंद्रनाथ टैगोर ने लिखा है—

“को लेईबो मोर कार्य, कहे सांध्य रवि,
सुनिया जगत रहे, निरुत्तर छवि,
माटिर प्रदीप छिलो, से काहिबो स्वामी,
आमार जेटुकु साध्य, कोरिबो ता आमि”।

जगत को प्रकाश देने का कार्य कौन करेगा? सारा जग सुनकर निरुत्तर रह जाता है। किसी झोंपड़ी में से मिट्टी का कोई दीपक बोल उठा—

“हे स्वामी, मुझ से जितना हो सकेगा, मैं
आपका कार्य करूँगा”।

उपसंहार

साम्प्रत समय शिक्षा क्षेत्र में मूल्य शिक्षा की महती आवश्यकता है। समय तीव्र गति के साथ मानव की भौतिक जगत् की उड़ान ऊँचाइयाँ छू रही हैं, परन्तु उनकी आन्तरिक शक्तियाँ विस्मृत के गर्भ में जा रही हैं। अतः आज का मानव परवश है एवं दिशाशून्य बनता जा रहा है बाह्य व्यक्तित्वबोध एवं भौतिक विकास के आन्तरिक शक्तियों के विषय में उसकी सोच और खोज कुंठित होती जा रही है।

वर्तमान शिक्षा भौतिक विकास एवं धनोपार्जन पर मुख्य रूप से केंद्रित है एवं इसके कारण ही समाज में इन दिनों मानवीय मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों का सर्वत्र पतन दिखाई दे रहा है। इसके परिणामस्वरूप यह अवधारणा प्रचलित हो रही है कि मानवीय व नैतिक मूल्यों की शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु मूल्य एवं आध्यात्मिक शिक्षा हमारे व्यक्तित्व को सुदृढ़ बनाती है। मूल्यों की शिक्षा को जब पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया जाता है तब एक विशिष्ट आदर्श व मूल्यसंपन्न नागरिक जीवन निर्माण करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है एवं यह सर्वथा उपयुक्त ही है। क्योंकि शिक्षण काल में ही छात्र हर प्रकार की शिक्षा सीखकर जीवन बनाने की दिशा प्राप्त कर लेता है। पुनश्च आध्यात्मिक ज्ञान से भौतिक शिक्षा की परिसीमा एवं परिणाम सर्वदा न्यायोचित व सुखकर हो जाता है तथा एक वैश्विक दृष्टिकोण की प्राप्ति हो जाती है।

सामान्यतया ऐसा सोचा जाता है कि मूल्य शिक्षा की आवश्यकता मात्र बच्चों को ही है। परन्तु भौतिकवाद एवं अहम् की भावना युवाओं में नकारात्मक प्रवृत्तियों को जन्म दे रही है। इसलिए युवाओं को विशेषतः जो विद्यालय/

महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में अध्ययनरत हैं अनिवार्य/वैकल्पिक रूप से मूल्य शिक्षा दिए जाने की सख्त आवश्यकता है। शिक्षकों को भी अपने आदर्श व्यक्तित्व को निखारने का यही सशक्त माध्यम या साधन है। नेतृत्व आत्मसंयम, मूल्य एवं आध्यात्मिकता की शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करना, नैतिक व आध्यात्मिक सुधार के उदाहरण प्रस्तुत करना आज की आवश्यकता है। मूल्य शिक्षा से आज के छात्रों तथा शिक्षकों को व्यसनों से होने वाली हानियों को प्रभावशाली ढंग से बताया जा सकता है तथा तनावपूर्ण होते हुए भी उसके प्रभाव से मुक्त जीवन व्यतीत करना भी सिखाया जा सकता है।

अतः छात्रों को मूल्यनिष्ठ जीवन से संबंधित अपने शिक्षकों से मार्गदर्शन प्राप्त हों तो वे स्वयं एक सम्मानजनक स्थिति को अंगीकार कर अध्ययन या अन्य उपयोगी कार्य करना पसंद करेंगे। विश्व की सारी समस्याएँ तब समाप्त हो सकती हैं जब हम व्यक्तिगत स्तर पर सुधारने की कोशिश करेंगे क्योंकि विश्व की सभी समस्याएँ व्यक्तिगत समस्याओं का ही एक वृहद् आकार है। इसी उद्देश्य को चरितार्थ करने हेतु मूल्य शिक्षा व अध्यात्म को छात्रों व शिक्षकों के समक्ष उपस्थापित करना सर्वथा श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन

एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुधीर कुमार शर्मा*
श्याम सिंह सत्यार्थी**

वर्तमान की आवश्यकता शिक्षा के त्वरित तथा दूरगामी प्रभावों की व्यापकता का लगातार अध्ययन तथा पर्यवेक्षण है। निश्चित रूप से यह तय करना सरकार का काम है कि देश भर के निरक्षर लोगों की तादाद में और बढ़ोत्तरी न हो। यह समझना किसी भी बुद्धिजीवी के लिए दुःश्रुत प्रतीक नहीं होता कि देश और समाज में वास्तविक बदलाव मात्र विधेयक बनाने से नहीं लाये जा सकते बल्कि इसके लिए सार्थक क्रियान्वयन का होना प्रथम अनिवार्यता है। इस विधेयक के लिए सबसे बड़ी चुनौती जनसामान्य में शिक्षा के प्रति समझ पैदा करने की है। साथ ही इस समझ को साकार कर पाने की उनमें ललक भी होनी चाहिए। जनसामान्य को यह समझाना होगा कि उनके शिक्षा के बुनियादी अधिकार के तहत यदि उन्हें किसी भी स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ने का हक है तो उन्हें स्कूल के दायरे में पहुँचाकर उनकी पढ़ाई सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी है।

हर पीढ़ी के बच्चे देश के लिए ऐसे बीज होते हैं जिनमें भविष्य में फलों से भरे वृक्ष बनने की संभावनाएँ छिपी होती हैं। इन बीजों की देखभाल और पोषण इस तरह से हो, ताकि देश और समाज का भविष्य उन्नत, उज्ज्वल और प्रभावकारी हो। इस भविष्यगामी महत् कार्य को पूर्ण करने

की समस्त जिम्मेदारी प्रभावी शिक्षा के द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में कहा था कि—

“मैं भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांत को दृढ़तापूर्वक मानता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि इस लक्ष्य

* प्रवक्ता, शिक्षक शिक्षा संकाय, श्रीमती गेंदादेवी महाविद्यालय, कासगंज, काँशीराम नगर, उत्तर प्रदेश

** प्रवक्ता, शिक्षक शिक्षा संकाय, श्रीमती गेंदादेवी महाविद्यालय, कासगंज, काँशीराम नगर, उत्तर प्रदेश

को पाने का सिर्फ यही एक रास्ता है, कि हम अपने बच्चों को कोई उपयोगी उद्योग सिखाएँ और उसके द्वारा उसकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करें”।

संयोगवश वर्ष-2010 ‘हिन्द स्वराज’ का शताब्दी वर्ष था। इसके लेखक गाँधी जी मात्र सत्याग्रह आन्दोलनकारी ही नहीं थे, बल्कि निःशुल्क और बुनियादी शिक्षा का विचार देने वाले शिक्षाशास्त्री भी थे, साथ ही एक सुखद संयोग यह भी है कि केंद्र सरकार ने सन 2010 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का बाल विधेयक संसद से पारित करा लिया है। शिक्षा को सभी बच्चों का मौलिक अधिकार बनाने वाला ऐतिहासिक कानून 1 अप्रैल 2010 से सम्पूर्ण भारत में लागू हो गया है। इस कानून के तहत 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के सभी बालकों को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करायी जायेगी। यह कानून इस आयु वर्ग के सभी बच्चों को स्कूल पहुँचाने के कार्य को सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय व राज्य सरकारों पर बाध्यकारी होगा और यदि इसमें कहीं कोई कोताही हो तो बच्चों की तरफ से अदालत से भी यह अधिकार माँगा जा सकेगा।

‘शिक्षा का अधिकार’ के इस विधेयक में प्रथम दृष्टव्य चार मुख्य बातें सामने आती हैं। प्रथम—‘सभी को शिक्षा’ निश्चित ही इस बात पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि यदि इसका क्रियान्वयन हो गया तो इसमें भारत का भविष्य बदलने की शक्ति है क्योंकि इससे लड़के व लड़कियों की शिक्षा के मध्य फैले अन्तराल को समाप्त किया जा सकेगा साथ ही शहरी व ग्रामीण

बालकों के मध्य बढ़ती खाई को भी पाटा जा सकेगा। द्वितीय—इस विधेयक द्वारा बालकों के लिए पढ़ाई के स्कूल की अवधारणा को पुनर्जीवित किया गया है। यद्यपि इससे पूर्व भी कोठारी आयोग और बाद में राममूर्ति आयोग ने भी इस अवधारणा पर बल दिया था, परन्तु यह अवधारणा आज भी अपने जर्जर स्वरूप में हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी है। तृतीय—इस विधेयक द्वारा यह प्रावधान प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी निजी विद्यालय चाहे वह किसी भी स्तर तक अभिजात्य क्यों न हो, उसे अपने आस-पास रहने वाले गरीब बालकों के लिए 25% सीटें रिजर्व रखनी होंगी। लेकिन जिस तरह की हमारी पूँजीवादी व्यवस्था है उसमें इन गरीब बालकों को वातानुकूलित कक्षाओं में बैठकर शिक्षा पाने का सपना साकार हो सकेगा यह मृग-मरीचिका के समान प्रतीत हो रहा है क्योंकि एक ओर जहाँ गरीब बालकों का ऐसे अभिजात्य विद्यालयों में प्रवेश मिलना भी दुःशकर है दूसरी ओर यदि ये बालक इस विधेयक के बल पर प्रवेश पाने में सफल भी रहते हैं तब उस विद्यालयी वातावरण में इन बालकों के समायोजन और व्यक्तित्व विकास की क्या स्थिति होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। चतुर्थ—एक अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान जो इस विधेयक द्वारा हमारे सम्मुख उपस्थित होता है वह है आठवीं कक्षा तक के बालकों को अनुत्तीर्ण न करने और बालकों को हर वर्ष परीक्षा देने से मुक्ति देने का प्रावधान।

इस कानून के पारित होने के पूर्व इसे लगभग आठ वर्षों का वनवास झेलना पड़ा। काफी प्रतीक्षा के बाद शिक्षा के अधिकार का विधेयक अंततः 1 अप्रैल 2010 को लागू हुआ जबकि वर्ष 2002 में

इस संबंध में संविधान संशोधन की प्रक्रिया लागू हुई और अधिनियम 2008 में पारित हुआ। 6-14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए संविधान में 86वाँ संशोधन कर सन् 2002 में राज्य स्तर पर इसकी जिम्मेदारी डाली गयी थी, परंतु तब से लेकर आज तक न तो राष्ट्रीय मीडिया, न नेतागण और न ही सामान्य जनो ने इसे विशेष बनाने में कोई विशेष प्रयत्न किया। आखिर राष्ट्रीय महत्व के इस विधेयक पर सब ओर चुप्पी और बेरुखी का क्या औचित्य माना जाय? जिस देश की साक्षरता दर लगभग 65% हो और लगभग 30 करोड़ की आबादी निरक्षर हो उस देश के लिए संसद में पारित बिल ऐतिहासिक महत्व तथा राष्ट्रीय गर्व का हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब शिक्षा देश की प्राथमिकता है और यह विधेयक राष्ट्रीय गर्व का विषय है तब इस विधेयक के लागू होने की प्रक्रिया में इतना समय क्यों लगा?

देश में 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बालकों की कुल संख्या अनुमानतः 22 करोड़ है और इस आयु वर्ग के 4.6 प्रतिशत बालक (लगभग 92 लाख) अभी भी विद्यालय की चौखट तक नहीं पहुँचते हैं। माना जा रहा है कि इस कानून के लागू हो जाने से विद्यालय न जाने वाले औसतन एक करोड़ बच्चों की तकदीर बदलने की शुरुआत हो जाएगी। यह बात सुनने में बहुत आश्वासन देती है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या सिर्फ विधेयक बन जाने से देशभर के बालकों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का रास्ता सफलतापूर्वक तय हो जाएगा?

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजादी के लगभग 63 वर्ष बाद भी यह अनिश्चितता बनी हुई है कि देश में सभी को शिक्षा मिल पाएगी अथवा नहीं? आखिर कब तक हम यह दोहराते रहेंगे कि अँग्रेजों ने अपनी आवश्यकतानुसार तथा उपनिवेशवादी रणनीति के तहत जो शिक्षा व्यवस्था यहाँ लागू की थी, वह हमें हानि पहुँचा रही है। वर्तमान समय में शिक्षा के अधिकार का विधेयक देशभर में जिस तरह से चर्चा में है उससे तो यह स्पष्ट नज़र आ रहा है कि इतनी लम्बी प्रतीक्षा के उपरांत इसके बारे में जो उत्साह और तैयारी का वातावरण बनना था वह नहीं बना है। इतना जरूर तय है कि इस विधेयक के परिप्रेक्ष्य में कुछ नए स्कूल खुल जायेंगे, कुछ नए अध्यापक नियुक्त हो जायेंगे तथा थोड़े से मानदेय पर कार्य कर रहे शिक्षामित्र जैसे शिक्षाकर्मियों नियमित होने का सपना देख सकेंगे।

इस विधेयक के लागू होने के बाद देश भर में शिक्षकों का अभाव एक बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने आ खड़ा होता है।

“नये कानून के लागू होने के बाद बड़े स्तर पर सेवाकालीन तथा नवीन शिक्षकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क (NCF) 2005 तथा NCERT ने देशभर में शिक्षकों के रिक्त हो रहे पदों और अध्यापकों की आवश्यकता के अनुसार जो आँकड़ा तैयार किया है उसके अनुसार 2009 से 2011 के बीच प्राथमिक स्तर से लगभग 11 लाख 99 हजार शिक्षक तथा माध्यमिक स्तर से 5 लाख 83 हजार शिक्षक सेवानिवृत्त हो जायेंगे”¹

¹कुलदीप, अमर उजाला, आगरा 28 जून, 2009

वैसे तो स्कूली शिक्षकों के खाली पदों के मामले में केंद्र व राज्य दोनों ही सरकारें जिम्मेदार हैं, लेकिन केंद्र की नज़र में सबसे अधिक गड़बड़ उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में है। देश भर के सरकारी स्कूलों के 46.2 लाख शिक्षकों के स्वीकृत पदों में लगभग 8 लाख (लगभग 17%) पद खाली है।

“केवल उत्तर प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में इसे देखा जाए तो वर्तमान में इस अधिनियम के लागू होने पर प्रदेश के प्राथमिक स्कूलों में तत्कालिक तौर पर 3.25 लाख शिक्षकों की आवश्यकता है तथा उच्च प्राथमिक स्कूलों के लिए 65 हजार शिक्षकों की दरकार है। उच्च प्राथमिक स्कूलों में कला, स्वास्थ्य शिक्षा और कार्य शिक्षा (Work Education) जैसे विषयों के लिए 45 हजार अंशकालिक शिक्षकों की आवश्यकता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम

की धारा-6 पर अमल करने के लिए प्रदेश में तीन वर्ष के अंदर 7 हजार नये विद्यालय स्थापित करने होंगे। इन विद्यालयों के लिए लगभग 16 हजार और नये शिक्षकों की आवश्यकता होगी”²

हमारे देश में संचालित स्कूली तंत्र दुनियाँ का दूसरा सबसे बड़ा स्कूली तंत्र है परंतु यह शिक्षकों की कमी से बुरी तरह जूझ रहा है। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत 2.5 लाख से अधिक पद रिक्त पड़े हैं। उसकी जबाब देही राज्यों के साथ केंद्र सरकार भी है। लेकिन शिक्षकों के बाकी 5 लाख 38 हजार से अधिक पद राज्य सरकारों के अपने कोटे में खाली पड़े हैं। हालांकि इन बदतर स्थितियों में भी देश के तीन राज्य केरल, मेघालय और नागालैंड ऐसे हैं जहाँ स्कूली शिक्षक का एक भी पद रिक्त नहीं है। देश के प्राथमिक शिक्षकों की आवश्यकता वाले प्रमुख 6 राज्यों का तालिकाबद्ध ब्यौरा निम्न प्रकार है—

स्कूली शिक्षकों के राज्यवार स्वीकृत, कार्यरत व रिक्त पदों की स्थिति—

राज्य	स्वीकृत पद			कार्यरत पद			खाली पड़े पद		
	राज्य शिक्षक	सर्वशिक्षा अभियान	योग	राज्य शिक्षक	सर्वशिक्षा अभियान	योग	राज्य शिक्षक	सर्वशिक्षा अभियान	योग
उ.प्र.	335870	276217	612087	177629	249481	447110	138241	26736	164977
बिहार	205965	260841	466806	149561	160145	309706	56404	100696	157100
झारखण्ड	68867	94605	163472	48262	83459	131721	20605	11146	31751
प. बंगाल	317803	107219	425022	274127	61605	335732	43676	45614	89290
पंजाब	80981	4840	85831	66882	4813	71695	14109	27	14136
हरियाणा	77639	8948	86587	51773	8936	60709	25866	12	25878

(नोट—तालिका केंद्र सरकार के पास उपलब्ध आंकड़ों पर आधारित) द्वारा—राजकेश्वर सिंह, नई दिल्ली, दैनिक जागरण, आगरा, 17 जून 2010

²राजीव दीक्षित, लखनऊ, दैनिक जागरण, आगरा, 12 अप्रैल 2010

प्रस्तुत आँकड़ों से स्पष्ट है कि उ.प्र. जैसे बड़े राज्यों में शिक्षकों की एक बड़ी संख्या आवश्यकता के रूप में सामने आती है। यदि शिक्षकों के इस अभाव को पूरा करने का प्रयास किया भी जाए तब भी कोई सार्थक हल नहीं निकलता, क्योंकि इन अध्यापकों को तैयार करने के लिए उत्तर प्रदेश के 70 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में स्वीकृत शिक्षक पदों के सापेक्ष लगभग 60% पद रिक्त चल रहे हैं, तथा प्रदेश के इन प्रशिक्षण संस्थानों में प्रत्येक वर्ष मात्र 10650 शिक्षकों को ही बी.टी.सी. प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है वहीं दूसरी ओर हर वर्ष बेसिक शिक्षा विभाग से सेवानिवृत्त होने वाले शिक्षकों की संख्या 12 से 14 हजार के मध्य है। यद्यपि उच्च न्यायालय के आदेशानुसार प्रदेश भर में 47 निजी विद्यालयों को बी.टी.सी. की 50 सीटों के लिए मान्यता प्रदान की गयी है और 150 कॉलेज अभी भी मान्यता के लिए प्रतीक्षारत हैं। यदि इन सभी कॉलेजों को मान्यता दे भी दी जाए, तब भी इतनी बड़ी संख्या में प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था करना आसान सिद्ध नहीं होगा।

बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य 'शिक्षा का अधिकार' के विधेयक के समक्ष जो अगली समस्या मुँह खोले खड़ी है वह यह है कि इस अधिनियम को अमल में लाने के लिए वित्तीय अनुमानों के बारे में केंद्र सरकार के महकमों और अन्य संस्थाओं के बीच में सर्वसम्मति नहीं है।

“केंद्र सरकार द्वारा गठित 13वें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' ने 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम पर 2010-15 की

अवधि के लिए 173946 करोड़ रुपये की जरूरत का अनुमान लगाया है वहीं दूसरी ओर 'केंद्रीय योजना आयोग' ने अपनी 10 नवंबर, 2009 की टिप्पणी में इस पर 144871 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान लगाया है। जबकि 'वित्त मंत्रालय' ने इस विषय में कोई वित्तीय अनुमान उपलब्ध ही नहीं कराया”³

इन परिस्थितियों में जबकि इस अधिनियम को क्रियावित करने के लिए जिस धनराशि की आवश्यकता होने वाली है, उस पर ही जब सरकारी संस्थाएँ एकमत नहीं हैं तब इसके क्रियान्वयन में होने वाली आर्थिक खींचतान का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। यह एक और विचारणीय प्रश्न होगा कि विद्यालयों के लिए स्वीकृत धन का कितना भाग विद्यालयों तक सही सलामत पहुँच पाता है। इसके बाद भी यह समस्या खत्म होने का नाम नहीं लेती क्योंकि अगली समस्या इस खर्च को लेकर राज्यों एवं केंद्र सरकार के मध्य बँटवारे की है, जहाँ अधिकाँश राज्य इस विधेयक के क्रियावित होने पर व्यय की जाने वाली राशि के लिए केंद्र सरकार को निहार रहे हैं।

शिक्षा के अधिकार के लिए अमलीकरण के लिए जरूरी संसाधनों के खर्च को लेकर उत्तर प्रदेश सरकार एवं केंद्र सरकार के मध्य गत वर्ष से ही तनाव की स्थिति है।

“उत्तर प्रदेश की वर्तमान मुख्यमंत्री मायावती जी ने वर्तमान प्रधान मंत्री श्री मनमोहन सिंह को पत्र लिखकर स्पष्ट किया है कि यदि केंद्र शिक्षा के अधिकार अधिनियम को लेकर

³राजीव दीक्षित, लखनऊ, दैनिक जागरण, आगरा, 26 अप्रैल 2010

वास्तव में गम्भीर है तो राज्य में वह इस कानून के लागू होने पर आने वाला पूरा खर्च खुद वहन करे। उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के अनुसार इस अधिनियम के लागू करने पर राज्य को अगले 5 वर्षों में लगभग 18000 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी, इसमें से 45% (लगभग 8000 करोड़) रुपये की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी राज्य सरकार पर डाली गयी है, प्रदेश की मौजूदा आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह भारी भरकम खर्च उठा पाना राज्य के लिए संभव नहीं है।⁴

“वर्तमान वित्तीय वर्ष में केंद्र व राज्य के बीच सर्व शिक्षा अभियान में खर्च का बंटवारा 55 : 45 के अनुपात पर आ गया है और अगले वित्तीय वर्ष में इसको 50 : 50 होना है लेकिन अनिवार्य शिक्षा अधिकार विधेयक के अमल में कई नवीन चुनौतियों के मद्देनजर सर्व शिक्षा अभियान के तहत बजट में बँटवारे को सरकार 65 : 35 करना चाहती है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि दसवीं पंचवर्षीय योजना में केंद्र व राज्यों के मध्य खर्च का बँटवारा 75 : 25 का था। 11वीं योजना में इसे 50 : 50 किया जाना था जो राज्यों के कड़े विरोध के चलते न हो सका बल्कि उसे चरणबद्ध तरीके से 65 : 35, 55 : 45 और 2011-2012 में 50 : 50 करने का रास्ता निकाला गया।⁵

यहाँ यह तथ्य भी अवश्यम्भावी है कि बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के

कानून पर अमल भी सर्व शिक्षा अभियान की रोशनी में ही होना है जबकि आवश्यकता एवं साक्षरता दर को देखते हुए शैक्षिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश जैसे राज्य शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन पर आने वाले सम्पूर्ण खर्च की जिम्मेदारी केंद्र को सौंपना चाहते हैं।

एक और बड़ी समस्या शिक्षा के अधिकार के क्रियावयन में बालकों के विद्यालय और निरंतर शिक्षा से जुड़े रहने की है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2008-2009 में पूरे देश में प्राइमरी शिक्षा में 1 करोड़ 34 लाख बच्चों ने प्रवेश लिया परंतु कक्षा 6 से 8 के बीच मात्र 53 लाख बच्चे ही पहुँच सके। अपव्यय एवं अवरोधन की इस देशव्यापी प्रबल समस्या से निपटने के लिए किये जाने वाले प्रयास कितने कारगर साबित होंगे यह आने वाला समय बताएगा क्योंकि वर्तमान स्थिति के अनुसार कक्षा 5 के बाद लगभग आधे बच्चे स्कूलों से बाहर हो जाते हैं। ग्रामीण अंचल में प्राथमिक शिक्षा की स्थितियों पर संस्था ‘प्रथम’ द्वारा किये गए वार्षिक सर्वे की रिपोर्ट ‘एनुअल स्टेट्स ऑफ़ एजुकेशनल रिपोर्ट-2008’ के अनुसार उत्तर प्रदेश के 16 वर्ष से अधिक आयु के 19.8% लड़के तथा 16.6% लड़कियाँ तथा 16 वर्ष आयु वर्ग के 6.8% लड़के एवं 10.2% लड़कियाँ स्कूल नहीं जाती हैं। इस विषय में उत्तर प्रदेश के कुछ प्रमुख जिलों के आँकड़े इस प्रकार हैं—

⁴शिक्षा के अधिकार का पूरा खर्च दे केंद्र’, दैनिक जागरण, आगरा, 04 अप्रैल 2010

⁵फिर होगा स्कूली शिक्षा पर खर्च का बंटवारा’ राजकेश्वर सिंह, नई दिल्ली, अमर उजाला, आगरा, 03 अप्रैल 2010

क्रमांक	जिला	विद्यालय न जाने वाले बच्चे (% में)
1	बहराइच	16.5
2	लखीमपुर खीरी	13.5
3	शाहजहाँपुर	12.9
4	संत कबीर नगर	12.3
5	बाराबंकी	10.3
6	आगरा	8.5
7	मुरादाबाद	7.5
8	कानपुर	5.6
9	मेरठ	5.4
10	बरेली	5.1

(नोट-द्वारा संजीव मिश्र, कानपुर-दैनिक जागरण 25 अगस्त 2009)

निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा विधेयक के प्रमुख ध्येय 'सबको शिक्षा' के अंतर्गत एक और समस्या बालिकाओं की शिक्षा को लेकर है मुख्य रूप से यह समस्या देश में बालिकाओं की शिक्षा और उनके सामाजिक परिवेश को लेकर संकुचित मानसिकता की है। कई स्थानों पर अभिभावकों की स्थिति बालिकाओं को बालकों के साथ सह शिक्षा लेने से रोकती है, तो कई बार विद्यालयों के घर से दूर होने की स्थिति में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा पर स्वतः प्रतिबंध लग जाता है। सामान्य रूप से बालक और बालिकाओं की शिक्षा के लिए अभिभावकों की मानसिक विषमता भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। कई बार यह भी देखने में सामने आता है कि अभिभावक सामान्य से तनिक भी जटिल परिस्थिति होने पर लड़कियों को स्कूल भेजने से कतराते हैं। इस विधेयक के द्वारा सरकार ऐसे अभिभावकों की मानसिकता बदलने के लिए क्या प्रयास करने वाली है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है।

शिक्षा के सार्वजनीकरण में जहाँ एक ओर शिक्षकों का अभाव इस विधेयक के फलीभूत होने और व्यावहारिक रूप से लक्ष्य प्राप्त करने में संदेह उत्पन्न करता है, वहीं इसका एक और पक्ष यह भी है कि प्राथमिक शिक्षा के लिए उपलब्ध शिक्षक दूर दराज के क्षेत्रों में नियुक्ति एवं शिक्षण कार्य को लेकर उदासीनता अपनाए हुए हैं। यदि यह मान भी लिया जाए कि इस विधेयक द्वारा शिक्षा अगले 3 वर्षों में सभी बालकों की पहुँच में होगी और बालकों के गाँव की दहलीज पर स्कूल होगा ताकि बालकों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहीं दूर-दराज नहीं जाना होगा, तब इन दूर-दराज के ग्रामीण विद्यालयों में अध्यापकों की उपस्थिति कैसे सुनिश्चित मान ली जाए। यदि शिक्षक दूर-दराज के ग्रामीण एवं दुर्गम इलाकों में नियुक्ति ले भी लेते हैं तब यह तथ्य किससे छिपा है कि इन दुर्गम क्षेत्रों में प्रतिदिन जाकर शिक्षण कार्य करने में उसकी रुचि कितनी क्षीण है। शिक्षा से संबंधित अनेकों जाँच कमेंटियाँ इस बात की ओर कई बार इंगित कर चुकी हैं कि ये ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय शहरों से नियुक्ति पाये उन हजारों शिक्षकों के लिए सिर्फ मासिक वेतन पाने का माध्यम भर है। सामान्य रूप से यह शिक्षक इन विद्यालयों में शिक्षण कार्य करना तो दूर विद्यालयों में प्रतिदिन जाना भी नहीं चाहते। यह स्थिति तब और जटिल हो जाती है जब इन ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षक की नियुक्ति हो जाए। यह भारत के बेहिसाब ग्रामीण विद्यालयों की सच्चाई है।

अनिवार्य शिक्षा विधेयक की अगली व्यावहारिक समस्या निजी विद्यालय एवं उन कुछ विद्यालयों

में जो अभिजात्य वर्ग के विद्यार्थियों के लिए खोले जाते हैं, में आस-पड़ोस के 25% गरीब बालकों को प्रवेश देने की है। यद्यपि समान स्कूल व्यवस्था की अवधारणा बालकों को संविधान में निहित बराबरी का अवसर दिलाने की मूल भावना को साकार रूप देने में सक्षम है इसके बावजूद इसके व्यावहारिक प्रयोग की सफलता पर संदेह है। आस-पड़ोस के गरीब बालक के नाम से पुकारे जाने वाले यह वे बच्चे हैं जो पब्लिक स्कूलों में जाने का सपना तक नहीं देख पाते। इन पब्लिक स्कूलों को सरकार 25% फीस सरकारी खजाने से देगी। इसका सीधा अर्थ शिक्षा में व्यावसायीकरण को बढ़ावा दिये जाने से भी लिया जा सकता है क्योंकि इससे सरकारी स्कूलों की अनदेखी बढ़ेगी और नये निजी स्कूल खोलने की प्रवृत्ति को बल मिलेगा दूसरी ओर निजी स्कूल भी अनिवार्य शिक्षा का अधिकार में भागीदारी करने में अभी तक उदासीन रवैया अपनाये हुए हैं और इसके विरोध में अपने स्वर मुखर कर रहे हैं। यहाँ तक कि इस अधिनियम की वैधानिकता को ही निजी स्कूलों ने सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दे दी है। इस अधिनियम को लेकर निजी स्कूलों की मुख्य समस्याएँ आरक्षण को लेकर तथा बालकों को उम्र के हिसाब से उचित कक्षा में प्रवेश को लेकर हैं। इनका मानना है कि इस विधेयक के अनुसार यदि कोई बालक 13 वर्ष की आयु में प्रवेश लेने आये, तब उसे कक्षा 7 में प्रवेश मिलना चाहिए। इससे पूर्व की कक्षाओं की शिक्षा ग्रहण करने के अभाव में यह कैसे सम्भव है कि उसे सीधे कक्षा 7 में प्रवेश दिया जाये। निजी विद्यालयों का यह भी मानना है कि

जिन क्षेत्रों में अभी तक सरकारी विद्यालय नहीं हैं या अगले कुछ वर्षों में स्थापित होने वाले हैं वहाँ सरकार अपनी जिम्मेदारी निजी विद्यालयों पर कैसे थोप सकती है। निजी विद्यालयों को प्रवेश में आरक्षण को लेकर भी आपत्ति है जिसके अनुसार 25% का आरक्षण लागू किया जा रहा है जबकि इस विषय में सुप्रीम कोर्ट के 11 न्यायाधीशों की पीठ कह चुकी है कि गैर-सहायताप्राप्त निजी विद्यालयों व अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं को अपने मन से प्रवेश लेने का अधिकार है। सरकार गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में आरक्षण लागू नहीं कर सकती।

अंततः यह कहा जा सकता है कि आज शिक्षा के त्वरित तथा दूरगामी प्रभावों की व्यापकता का लगातार अध्ययन तथा पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता है। निश्चित रूप से यह तय करना सरकार का काम है कि देशभर के निरक्षर लोगों की तादाद में और बढ़ोत्तरी न हो। यह समझना किसी भी बुद्धिजीवी के लिए दुःशकर प्रतीत नहीं होता कि देश और समाज में वास्तविक बदलाव मात्र विधेयक बनाने से नहीं लाये जा सकते बल्कि इसके लिए सार्थक क्रियान्वयन का होना प्रथम अनिवार्यता है। इस विधेयक के लिए सबसे बड़ी चुनौती जनसामान्य में शिक्षा के प्रति समझ पैदा करने की है। साथ ही इस समझ को साकार कर पाने की उनमें ललक भी होनी चाहिए। जनसामान्य को यह समझाना होगा कि उनके शिक्षा के बुनियादी अधिकार के तहत यदि उन्हें किसी भी स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ने का हक है तो उन्हें स्कूल के दायरे में पहुँचाकर उनकी पढ़ाई सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी है।

आवश्यकता इस बात की भी है कि शिक्षा में पैर पसारती पूँजीवादी प्रवृत्ति को छोड़कर समाज के संभ्रांत और समृद्ध लोग शिक्षा संस्थाओं को गोद लें और बालक व विद्यालय के विकास में अपना योग प्रदान करें। क्योंकि शिक्षा किसी भी समाज की सबसे बड़ी सेवा है, उद्योग अथवा व्यवसाय की तरह कमाई का साधन नहीं। सरकारी मशीनरी का दुलमुल और अर्थलोलुप रवैया भी किसी भी नीति, अभियान या विधेयक को निष्फल बनाने में अग्रणी भूमिका निभाता है। सरकारी कोष से निकली राशि बंदरबाँट की प्रक्रिया से सकुशल निकलकर यदि विद्यालय और बालक तक पहुँच सकी तो यह अपने आप में एक सुखद आश्चर्य होगा। आवश्यकता इस बात की भी है कि जनसामान्य भी अपनी मनोवृत्ति में वांछित सुधार कर इस पुनीत लक्ष्य को प्राप्त करने में यदि देश और समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर

कर चल सके। अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यह सुनिश्चित करना कि यह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके, न सिर्फ केंद्र सरकार, राज्य सरकार और समाज के संभ्रांत वर्ग का काम है बल्कि जनसाधारण को भी महती भूमिका का निर्वाह करना होगा, क्योंकि वास्तव में मेधा और मुनाफा के मध्य संतुलन स्थापित करना कोई कठिन कार्य नहीं है, बल्कि इसके लिए देश और समाज के प्रत्येक वर्ग एवं इकाई को दृढ़ संकल्प और इच्छाशक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षा का अधिकार वास्तविक रूप में वर्तमान भारत की आवश्यकता है। अनेकों चुनौतियों के बावजूद यह प्रयास शिक्षित भारत का सपना साकार करने का हौसला प्रदान करता है बशर्ते कि इस अधिकार का प्रयोग महज कागजी खानापूरति तक सीमित न रह कर सम्पूर्ण भारत को ज्ञानवान बनाने के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाए।

प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी—शिक्षक के लिए चुनौती

अन्विति सिंह*

विभिन्न सरकारी प्रयासों के तहत प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षार्थियों की संख्या में अपार वृद्धि हुई है। इनमें बड़ी संख्या ऐसे शिक्षार्थियों की है जो प्रथम पीढ़ी के हैं। इन शिक्षार्थियों की विशिष्ट आवश्यकताएँ होती हैं जिन्हें सीमित समय एवं संसाधनों में पूरा करना किसी भी शिक्षक के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। क्या शिक्षक इस चुनौती का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए तैयार हैं? यदि नहीं तो क्यों? उन्हें इसका सामना कैसे करना चाहिए? इस लेख में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश की गई है।

प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए सरकार कई तरह के कार्यक्रम चला रही है। इनमें सबसे वृहद कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान है। इसके अंतर्गत किए जा रहे प्रयासों के फलस्वरूप विद्यालयों में शिक्षार्थियों की संख्या में अपार वृद्धि हुई है। इनमें बड़ी संख्या में शिक्षार्थी प्रथम पीढ़ी के हैं, अर्थात् ऐसे शिक्षार्थी जिनके माता-पिता ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की। प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी से तात्पर्य ऐसे विद्यार्थियों से है, जिन्होंने पहली बार घर से निकलकर विद्यालय का रुख किया है। भले ही विद्यालयों में दाखिला लेने वाले शिक्षार्थियों की संख्या में अपार वृद्धि हुई है लेकिन ये बच्चे विद्यालय में नहीं टिकते। प्राथमिक (कक्षा 1 से 5) अथवा प्रारंभिक (कक्षा 1 से 8) शिक्षा पूरी होने के

पूर्व ही बहुत से विद्यार्थी विद्यालय छोड़ देते हैं जिनमें से अधिकांश प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी होते हैं। इनके विद्यालय छोड़कर चले जाने के बहुत से सामाजिक-आर्थिक कारण गिनाए जाते हैं लेकिन उनके शैक्षिक कारणों की कहीं कोई खास चर्चा सुनाई नहीं देती। गौर से देखें तो विद्यालय छोड़ने की समस्या की जड़ कहीं बहुत गहरे हमारी शिक्षा व्यवस्था में ही निहित है जिसकी पड़ताल की जानी आवश्यक है। इसके लिए हमें बच्चों की सीखने की प्रक्रिया के बारे में संक्षेप में जानना होगा।

पियाजे के अनुसार बच्चों में सीखने की नैसर्गिक क्षमता होती है। वे आंतरिक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होते हैं। वे सीखते हैं क्योंकि उनकी दिमागी संरचना प्राकृतिक

* शोध छात्रा, द्वारा- आलोक कुमार राव, 17-डी-शॉप प्लॉट टाइप, पाण्डवनगर, दिल्ली-92

रूप से अपने परिवेश से सामंजस्य बिठाने के लिए विभिन्न संकल्पनाओं, अवधारणाओं एवं सोच-विचार के तरीके विकसित करने में सक्षम होती है।

बच्चों का यह बौद्धिक विकास सामाजिक एवं भौतिक परिवेश में होता है। सामाजिक परिवेश में विद्यार्थी व्यक्तियों के संपर्क में आते हैं और भाषा, संस्कृति, रहन-सहन इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। वे भौतिक परिवेश में विभिन्न वस्तुओं के संपर्क में आते हैं और आकार, आयतन, मात्रा, ठोस, द्रव, सजीव निर्जीव इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अर्थात् अपने परिवेश से वे भाषा ग्रहण करते हैं एवं विभिन्न प्राकृतिक, सामाजिक वस्तुओं एवं घटनाओं का परिचय प्राप्त करते हैं। बच्चों का यह परिवेश एक समान नहीं होता। वे विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों एवं परिवारों से आते हैं। अतः निश्चित है कि उनके परिवेश में विभिन्नता पाई जाएगी। विद्यालय जाने से पूर्व एवं बाद में बच्चे हमेशा अपने परिवेश से कुछ-न-कुछ ग्रहण करते रहते हैं जो उनके बौद्धिक विकास में सहायक होता है।

बच्चे का बौद्धिक विकास केवल परिवेश पर निर्भर नहीं करता बल्कि स्वयं उस पर भी करता है। बच्चे नैसर्गिक रूप से सीखने में सक्षम होते हैं। अतः वे न सिर्फ ज्ञान ग्रहण करते हैं बल्कि उसका सृजन भी करते हैं। वे अपने परिवेशजनित अनुभवों के आधार पर अवधारणाएँ, समझ और विचार शक्ति का सृजन करते हैं। ज्ञान का सृजन करने की यह क्षमता हर बच्चे में होती है।

बच्चे अपने परिवेश से जो भी सीखते हैं वे अपनी गति से सीखते हैं। वहाँ उनके सीखने की

प्रक्रिया उन्मुक्त, स्वतः स्फूर्त एवं नियम रहित होती है।

विद्यालय वह स्थान है जहाँ एक निश्चित समय में एक निश्चित योजना के अनुसार एक निश्चित पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जाती है। यह प्रक्रिया अनुशासित एवं नियमबद्ध होती है। विद्यालय का परिवेश बच्चों के पारिवारिक परिवेश से सर्वथा भिन्न होता है। इस योजना से सामंजस्य बिठाना सामान्य बच्चों के लिए भी कठिन होता है, लेकिन पारिवारिक सहयोग से कुछ ही समय में वे इस परिवेश के अभ्यस्त हो जाते हैं। प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी सुविधा वंचित समूह के बच्चों में आते हैं। ये शिक्षार्थी स्वयं को विद्यालय की किसी भी घटना/प्रक्रिया से नहीं जोड़ पाते, चाहे वह पाठ्यपुस्तक में छपी सामग्री हो या फिर शिक्षण विधियाँ अथवा अध्यापकों का व्यवहार (कुमारी, 2008)।

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों को विद्यालय के परिवेश से सामंजस्य बिठाने में बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन्हें सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं के साथ-साथ विभिन्न मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

ये बच्चे ऐसे परिवारों से आते हैं जिनकी कोई शैक्षिक पृष्ठभूमि नहीं होती। इनके परिवार वाले आमतौर पर निरक्षर होते हैं इसलिए इन्हें अपने घर से शिक्षा प्रक्रिया में कोई सहायता नहीं मिल पाती। इनका परिवेश भी शैक्षिक रूप से समृद्ध नहीं होता। अतः ये बच्चे धीरे-धीरे औरों के मुकाबले पिछड़ जाते हैं।

ऐसा देखा गया है कि विद्यालय में ये शिक्षार्थी विचारों को अभिव्यक्त करने में झिझकते हैं। वे अपनी भावनाएँ, समस्याएँ एवं विचार अपने सहपाठियों एवं शिक्षक के साथ बाँट नहीं पाते। उनके पढ़ने की गति भी औरों के मुकाबले धीमी होती है जो उनकी समस्याओं में बढ़ोत्तरी करती है। बहुत बार ये समस्याएँ उनके विद्यालय छोड़ने का कारण भी बन जाती हैं (कुमार 2008)।

इन बच्चों में आत्मविश्वास की कमी पाई जाती है। ये बच्चे विविध गतिविधियों में हिस्सा लेने से कतराते हैं और अधिकतर अलग-थलग रहने का प्रयास करते हैं।

इनके पारिवारिक एवं विद्यालयी परिवेश में बहुत अंतर होता है। इस दो तरह के परिवेश से सामंजस्य बिठाने में बच्चे बहुत-सी मनोवैज्ञानिक समस्याओं के शिकार हो जाते हैं। अपने माता-पिता से इन्हें किसी प्रकार का शैक्षिक, व्यावसायिक अथवा व्यक्तिगत निर्देशन नहीं मिल पाता। परिवार द्वारा इनके अंदर अपेक्षित मूल्यों एवं अभिवृत्तियों का विकास भी नहीं हो पाता। कक्षा में शिक्षक भी इनके प्रति अपेक्षित ध्यान नहीं देते। कमजोर बच्चों के पीछे शिक्षक अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहते। वे मान लेते हैं कि ये बच्चे कभी पढ़ नहीं पाएंगे। जबकि—

“पढ़ना सही ढंग से सीखने के लिए यह जरूरी है कि हर बच्चे को शिक्षक पर्याप्त समय अलग से दें” (पाण्डे, 2008)।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) कहती है—

“अगर शिक्षा को जीने के लोकतांत्रिक तरीकों को सुदृढ़ करना है तो उसे स्कूल जानेवाली

पहली पीढ़ी की उपस्थिति का भी ध्यान रखना ही होगा जिसका स्कूल में बने रहना उस संविधान संशोधन के चलते अनिवार्य हो गया है जिसने आरंभिक शिक्षा को हर बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया है”।

यही नहीं, आगे यह कहती है कि—

“.. शिक्षा का अधिकार अब एक मौलिक अधिकार बन गया है जिसका आशय है कि ऐसे लाखों बच्चों का नामांकन होगा जो प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थी हैं। ऐसे तत्वों को स्कूल में बनाए रखने के लिए व्यवस्था को जिसमें निजी क्षेत्र भी शामिल हैं यह मानना होगा कि बचपन कई तरह के हैं और उभरते हुए परिदृश्य में क्षमता, व्यक्तित्व और आकांक्षाओं का कोई एक मानक काम नहीं कर सकता। स्कूल प्रशासकों और शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि जब सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और क्षमता वाले लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं तो कक्षा का वातावरण और भी समृद्ध तथा प्रेरक हो जाता है।”

स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम के निर्माण तथा विद्यालय में उसके क्रियान्वयन के दौरान प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों का ध्यान रखना आवश्यक है।

हमारे विद्यालयों की कक्षाएँ भारतीय समाज की बहुलता तथा विविधता को दर्शाती हैं। यही वजह है कि एन.सी.एफ.टी.ई. (2009) के अनुसार शिक्षक को न सिर्फ पढ़ाने का ज्ञान होना चाहिए बल्कि उसे विद्यार्थी तथा उसके माता-पिता एवं समुदाय का भी ज्ञान होना चाहिए जिससे बच्चे विद्यालय नियमित रूप से आएँ और पढ़ें। इससे

इस तथ्य की पुष्टि होती है कि शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। शिक्षक ही वह व्यक्ति है जो किसी विद्यार्थी को विद्यालय आने के लिए प्रेरित कर सकता है।

एन.सी.एफ. 2005 ने शिक्षक की परिकल्पना एक ऐसे व्यक्ति के रूप में की है जो बच्चे के सीखने की प्रक्रिया में इस प्रकार सहायता करता है कि बच्चा स्वयं ज्ञान का सृजन करता है। इस प्रक्रिया में शिक्षक ज्ञान का सहसृजक होता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) में शिक्षक को शारीरिक दंड से दूर रहने के लिए कहा गया है। हम देखते हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा से लेकर शिक्षा का अधिकार अधिनियम तक, सबमें शिक्षक की भूमिका को बहुत महत्व दिया गया है।

यहाँ यह विचारणीय है कि क्या वर्तमान में विद्यालयों में शिक्षक अपनी भूमिका का निर्वाह पूरी ईमानदारी से कर रहे हैं? और यदि नहीं तो क्यों? शोध दर्शाते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों एवं शहर के झुग्गी-झोंपड़ी वाले क्षेत्रों के विद्यालयों से शिक्षक प्रायः अनुपस्थित ही रहते हैं। यदि आते भी हैं तो अध्यापन कार्य में बहुत ही कम समय देते हैं। मल्टीग्रेड विद्यालयों की स्थिति तो और भी खराब है। वहाँ एक दिन में एक समूह को शिक्षक कभी-कभी 25 मिनट से भी कम समय दे पाते हैं।

आदिवासी क्षेत्रों के विद्यालयों में आदिवासी बच्चों का नामांकन करते समय प्रधानाध्यापक उनसे उनकी पहचान छीन लेते हैं अर्थात् उनका नाम बदल दिया जाता है जो सीधे-सीधे उनकी संस्कृति पर हमला है। आवासीय विद्यालयों की

स्थिति इतनी खराब है कि कम ही बच्चे वहाँ से अपनी शिक्षा पूरी कर पाते हैं।

शिक्षक बच्चों को शारीरिक दण्ड देने के साथ-साथ कभी-कभी उनसे कूड़ा तक उठवाते हैं। कक्षा में पढ़ाते समय फोन पर बात करना और बच्चों को प्रश्न पूछने से निरुत्साहित करना शिक्षकों के लिए आम बात है। (टाइम्स ऑफ इण्डिया, 15 जुलाई 2010)

शिक्षकों के ऐसे व्यवहार के लिए बहुत हद तक सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार हैं। शिक्षकों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए पैरा शिक्षकों की एक ऐसी फौज तैयार कर दी गई है जो कि प्रशिक्षित नहीं है। अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नाम से संबोधित जैसे शिक्षा कर्मी एवं गुरुजी (मध्य प्रदेश), शिक्षा मित्र (उत्तर प्रदेश)। ये शिक्षक कम वेतनमान पर नियमित शिक्षकों के बराबर और कभी-कभी उनसे भी अधिक कार्य करते हैं। ये शिक्षक असंतुष्ट होते हैं और यह असंतुष्टि कक्षाओं में अध्यापन कार्य के दौरान साफ नज़र आती है।

ऐसा नहीं है कि प्रशिक्षित शिक्षक अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह उचित ढंग से कर रहे हैं। कारण यह कि शिक्षक प्रशिक्षक कार्यक्रमों के द्वारा शिक्षकों को इस तरह से प्रशिक्षित ही नहीं किया जाता कि वे कक्षाओं के विविधता पूर्ण परिवेश को सही ढंग से संचालित कर पाएँ। अब भी बहुत से शिक्षक मानते हैं कि ज्ञान देने की वस्तु है न की सृजित करने की।

विद्यार्थियों के सांस्कृतिक-सामाजिक ज्ञान को दिन प्रतिदिन के शिक्षण कार्य से इसे जोड़ना कि शिक्षार्थी स्वयं ज्ञान का सृजन कर पाएँ—इस कला से अधिकांश प्रशिक्षित शिक्षक भी परींचित

नहीं हैं और यदि हैं भी तो विभिन्न कारणों से इसे कक्षा में अपनाते नहीं।

परीक्षा केंद्रित एवं पाठ्यपुस्तक केंद्रित इस शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा पूर्व पाठ्यपुस्तक में दी हुई विषयवस्तु को खत्म कराने की जद्दोजहद में शिक्षक इस कदर उलझकर रह जाते हैं कि वे शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य—शिक्षार्थी के विकास की तरफ से ही उदासीन हो जाते हैं।

हम जानते हैं कि हमारे विद्यालय संसाधनों की कमी से जूझ रहे हैं इसलिए शिक्षकों को विद्यालयों में बहुत-सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। इन कठिनाइयों के बीच भी शिक्षक यदि चाहें तो प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों की बहुत-सी समस्याएँ दूर हो सकती हैं क्योंकि उन्हें प्रेम, विश्वास और आत्मीयता चाहिए जो सिर्फ शिक्षक ही दे सकता है (पाण्डे, 2008)। शिक्षक बच्चे को यह विश्वास दिला दे कि वह उस पर ध्यान दे रहा है, बस उसे यही चाहिए।

शिक्षक को अपनी शैक्षिक गतिविधियाँ इस प्रकार संचालित करनी चाहिए कि बच्चों को आपस में बातचीत करने के अधिक-से-अधिक अवसर मिलें। इससे वे अपने अनुभवों को एक दूसरे से बाँट पाएँगे और उनके अनुभव का दायरा विस्तृत होगा।

प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों में आत्मविश्वास की कमी पाई जाती है। यदि शिक्षक उनकी योग्यता एवं प्रतिभा पर विश्वास करेंगे तो निश्चित ही उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा।

प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चे अधिक होते हैं। उन्हें उनकी मातृभाषा ही आती है जबकि

अधिकांश विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ होती हैं। ऐसे में उन्हें भाषागत समस्याओं से जूझना पड़ता है। कक्षा में शिक्षक को इन बच्चों का ध्यान रखना चाहिए तथा इनसे बात करते समय यथासंभव सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

शिक्षक को अपने उदाहरणों एवं प्रश्नों में विविधतापूर्ण नाम प्रयोग में लाने चाहिए जिससे कक्षा के सारे बच्चों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व हो सके और वे कक्षा के अध्यापन प्रक्रिया से स्वयं को जोड़ सकें। ऐसा करने से प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थी स्वयं को मुख्यधारा से जुड़ा हुआ महसूस करेंगे। ये शिक्षार्थी सबके सामने अपने विचार, भाव एवं अनुभव प्रकट करने में संकोच करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इन्हे सोचने समझने के लिए थोड़ा अधिक समय दिया जाए जिससे वे घबराहट न महसूस करें और सुसंगत भाषा में अपने विचार, भाव, और अनुभव सबके सामने रख पाएँ। एक ऐसा सकारात्मक परिवेश जहाँ शिक्षार्थी बे-हिचक एक दूसरे से अपने अनुभव बाँट पाएँ। सामाजिक, सांस्कृतिक विलगाव दूर करने में सक्षम होता है और शिक्षार्थियों में एकता की भावना पनपने का अवसर भी देता है।

यह भी बहुत आवश्यक है कि इन शिक्षार्थियों की विशिष्ट आवश्यकताओं का ध्यान तो रखा जाए लेकिन इस बात का उन्हें अहसास न हो कि वे अलग हैं क्योंकि इससे उनमें हीन भावना भी पनप सकती है जो उनके स्वस्थ शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए हितकर नहीं।

गाँधी जी के बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों के लिए बहुत उपयोगी हैं। शिक्षा की इस योजना में बच्चों में शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान तथा दूसरों के साथ मिल-जुलकर काम करने की प्रवृत्ति के विकास पर विशेष जोर दिया जाता है। इससे किसी भी प्रकार का काम करने में उन्हें अरुचि या घृणा नहीं होती और हीनता की भावना भी नहीं आती।

योग्यता और प्रतिभा में ये बच्चे किसी से कम नहीं। यदि कहीं कमी है तो वह वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में है जहाँ हर बच्चे की योग्यता और प्रतिभा को विकसित होने का समान अवसर नहीं मिलता। इस शिक्षा व्यवस्था में सकारात्मक

परिवर्तन तो हो रहे हैं लेकिन धीमी गति से। शिक्षक यदि चाहें तो इस व्यवस्था में भी अपनी इच्छाशक्ति से यथासंभव इन बच्चों को आगे बढ़ने एवं विकसित होने का पूरा अवसर दे सकते हैं।

आज के शिक्षकों को विविधतापूर्ण परिवेश में शिक्षा प्रक्रिया से जुड़ने का अवसर मिला है। इस अवसर का सदुपयोग करते हुए उन्हें अपनी शैक्षिक गतिविधियों में प्रत्येक बच्चे के अनुभवों को पिराने का प्रयास करना चाहिए इससे बच्चों को विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं एवं धर्मों की जानकारी तो मिलेगी ही, उनके स्वयं के अनुभव का दायरा भी विस्तृत होगा।

संदर्भ

- कुमार, कृष्ण. 2008. अशोक की कहानी, *पढ़ने की दहलीज पर*, संपादक-लता पाण्डे, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली
- कुमारी, शारदा. 2008. सही मायनों में आखिर 'पढ़ना' है क्या? *पढ़ने की दहलीज पर*, संपादक-लता पाण्डे, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
- एन.सी.ई.आर.टी., *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन 2009*, नई दिल्ली
- एन.सी.ई.आर.टी., *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, नई दिल्ली
- पाण्डे, लता. 2008. *पढ़ने की दहलीज पर*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
- पुष्करणा, नेहा. 2010. एवरी पोस्टकार्ड हैड स्टोरी टू टैल. *टाइम्स ऑफ इंडिया*, 15 जुलाई 2010, नई दिल्ली
- प्रोब. 1999. *पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

दिल्ली में लड़कियों के स्वतंत्र मदरसों का जैडर परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत एक शोध अध्ययन

सुषमा जयरथ*

प्रस्तुत लेख दिल्ली के ओखला क्षेत्र में जामिया नगर स्थित लड़कियों के चार स्वतंत्र मदरसों पर आधारित है। इस लेख के माध्यम से जामिया नगर में संचालित लड़कियों के मदरसों का जैडर परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत एक शोध अध्ययन हेतु विश्लेषण किया गया है, जिसके तहत इन मदरसों की विचारधारा, पाठ्यक्रम तथा विभिन्न पणधारियों के विचारों को समझने का प्रयास किया गया है।

सच्चर कमेटी 2005-06 की रिपोर्ट से मुस्लिम लड़कियों की वास्तविक स्थिति जानने के पश्चात् यह अनुभव हुआ कि मुस्लिम समाज लड़कियों की शिक्षा एवं सशक्तिकरण के प्रति उतना जागरूक नहीं है। यद्यपि भारत में बहुत पहले से ही मदरसा शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत लड़कियों को भी शिक्षा दी जाती रही है परंतु 1990 के बाद ही दिल्ली में ऐसे मदरसे अस्तित्व में आए, जो लड़कियों के लिए खोले गये थे और ऐसा प्रतीत होता है कि इन मदरसों से भी बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हो पाया। आँकड़ों पर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि मुस्लिम

लड़कियों की शैक्षिक स्थिति अन्य समुदायों की तुलना में बहुत पीछे है। ऐसी स्थिति को देखते हुए जैडर परिप्रेक्ष्य पर आधारित मदरसा परियोजना के इस शोध कार्य से मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा, विकास तथा सशक्तिकरण के संबंध में गहराई से जानने का प्रयत्न किया गया है। इस परियोजना के अनुभवों को इस लेख में कलमबद्ध किया गया है। यह लेख मदरसों के मुख्य उद्देश्यों, लड़कियों के नामांकन तथा स्थिति, उनके शिक्षा त्यागने (ड्रॉपआउट) के कारण तथा अध्यापकों, छात्रों व छात्राओं के बीच अंतर्क्रियाओं को सम्मिलित करता है। इस शोध कार्य के दौरान ओखला क्षेत्र

*प्रोफ़ेसर, महिला अध्ययन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली

से जामिया नगर के चार लड़कियों के मदरसों के सर्वेक्षण के लिए प्रश्नावली तथा साक्षात्कार सूचियों का प्रयोग किया गया। यह साक्षात्कार सूचियाँ छात्राओं से लेकर समुदाय प्रबंधक तक के लिए बनाई गईं, जिसमें मदरसा, शिक्षा व विकास तथा लैंगिक संवेदनशीलता से संबंधित प्रश्नों को पूछा गया। गहराई से सर्वेक्षण एवं विश्लेषण करने के बाद मदरसों से संबंधित प्राप्त जानकारी निम्न पृष्ठों में प्रस्तुत है—



मदरसा जामिया खैरुनिसा में कक्षा अभ्यास के दौरान छात्राएँ शिक्षा ग्रहण करती हुईं

निम्नलिखित मदरसों में बुनियादी तौर पर आलमियत (कक्षा 12) के स्तर तक की शिक्षा दी जाती है—

क्रम सं.	मदरसों के नाम व पता
1	जामियतुल बनात अल इस्लामिया (बी-112, गली न. 7, कालिन्दी रोड, शाहीन बाग, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली)
2	जामिया खैरुनिसा (डी-154, शाहीन बाग, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली)
3	महाद उम्मे सलमा (एफ-209/9 शाहीन बाग, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली)
4	आयशा सिद्दीका शरीयत कॉलेज (4 जोगाबाई, जामिया नगर, ओखला, नई दिल्ली)

मदरसों की विचारधारा

उपरोक्त मदरसों के नाज़िमों एवं प्रबंधकों से प्रश्नावली सूची द्वारा तथा बातचीत से यह पाया गया कि यह सभी मदरसे अलग-अलग विचारधारा के अनुसार संचालित हैं। जैसा कि जामियतुल बनात और महाद उम्मे सलमा पूर्ण रूप से देवबंदी विचारधारा को मानते हैं। जबकि मदरसा जामिया खैरुनिसा देवबंद और दारुल उलूम नदवा दोनों का मिश्रण है तथा आयशा सिद्दीका शरीयत कालेज पूरी तरह से अहले हदीस विचारधारा पर आधारित है।

देवबंदी विचारधारा सबसे पुरानी है जो औरंगज़ेब के राजकाल के दौरान दर्सेनिज़ामी पाठ्यक्रम द्वारा संचालित हुई। जबकि नदवा विचारधारा में आधुनिकता की झलक है। अहले हदीस पूरी तरह से परंपरावादी विचारधारा है। इसके अतिरिक्त एक और विचारधारा के मदरसे भी अलग-अलग क्षेत्रों में संचालित हैं जो कि बरेलवी के नाम से विख्यात हैं। यह विचारधारा लगभग देवबंदी विचारधारा पर आधारित है। यह सभी विचारधाराएँ इस्लामी धार्मिक अध्ययन के कारण समयानुसार अस्तित्व में आई हैं।

मदरसों की स्थापना

दिल्ली में अधिकांशतः लड़कियों के मदरसों की स्थापना 1990 के बाद हुई। उपरोक्त मदरसों में सबसे प्रथम मदरसा जामियतुल बनात अल इस्लामिया है, जिसकी स्थापना सन् 1996 ई. में हुई। सर्वेक्षण के दौरान मदरसा जामियतुल बनात के प्रधानाचार्य व नाज़िम से बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि यह मदरसा पहले दक्षिण निज़ामुद्दीन क्षेत्र में स्थापित

किया गया था और अब भी वहाँ संचालित है, परंतु जब छात्राओं की संख्या बढ़ी तो जगह की कमी के कारण दूसरा मदरसा बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में एक और मदरसा बना जो कि मुख्य इसी नाम से बनाया गया। मदरसा महाद उम्मे सलमा की स्थापना सन् 1998 में

हुई थी। मदरसा जामिया खैरुन्निसा की स्थापना सन् 2000 में हुई थी जैसा कि इस मदरसे की प्रधानाचार्या ने बताया। मदरसा आयशा सिद्दीका शरीयत कॉलेज की स्थापना 2005 में हुई। इन सब मदरसों के प्रधानाचार्यों के अनुसार इनमें आलमियत¹ (12वीं) और फज़ीलत² (B.A.) तक की डिग्री दी जाती है।

मदरसों की स्थापना व छात्राओं का नामांकन निम्न तालिका में दर्शाया गया है—

क्रम सं.	मदरसों के नाम	स्थापना	छात्राओं का नामांकन					
			1996	1998	2000-01	2004-05	2007	2009
1	जामियतुल बनात अल-इस्लामिया	1996	100	130	200	350	400	600
2	महाद उम्मे सलमा	1998	-	15	25	50	80	130
3	जामिया खैरुन्निसा (लिल बनात)	2000	-	-	15	50	80	130
4	आयशा सिद्दीका शरीयत कॉलेज	2005	-	-	-	80	150	250

मदरसों में छात्राओं का नामांकन

जामिया नगर के सभी मदरसों में लड़कियों के नामांकन में विभिन्नता है। जैसे—जामियतुल बनात में 2002 में लड़कियों की संख्या 200 थी। 2004-05 में यह संख्या 350 हो गई और 2009 तक यह संख्या बढ़कर लगभग 600 हो गई। महाद उम्मे सलमा की स्थापना जब 1998 में हुई उस समय इस मदरसे में छात्राओं की संख्या केवल 15 थी। 2004-05 में यह संख्या बढ़कर 50 हो गई, 2007 में इस मदरसे में 80 लड़कियाँ थीं तथा आज 130 हैं। मदरसा जामिया खैरुन्निसा में सन् 2000 में छात्राओं की संख्या केवल 15 थी, 2004-05 में यह संख्या बढ़कर 50 हो गई, 2007 में यह संख्या 80 थी तथा अब 130 हैं। इसी प्रकार जब मदरसा आयशा

सिद्दीका की स्थापना 2005 में हुई तो उस समय छात्राओं की संख्या 80 थी, 2007 में यह संख्या 150 थी और अब यह संख्या 250 है।

उपरोक्त प्राप्त आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि लड़कियों की संख्या लगातार बढ़ रही है और मदरसों में लड़कियों की शिक्षा दिन-प्रतिदिन प्रचलित हो रही है।

नामांकन के बारे में सभी मदरसों में वार्तालाप करने से पता चला कि उनके मदरसों में प्रवेश के लिए नामांकन और अधिक बढ़ सकते हैं, परन्तु उनके पास अभी इतने स्रोत नहीं हैं। इस बारे में जामियतुल बनात के संस्थापक के अनुसार मदरसे का कोई विज्ञापन न करवाने पर भी उनके यहाँ लगभग 200 प्रवेश प्रत्येक वर्ष हो जाते हैं। उन्हीं के अनुसार विज्ञापन इसलिए नहीं

¹ आलमियत-बारहवीं कक्षा का समानांतर

² फ़ज़ीलत-बी.ए. (स्नातक) का समानांतर

करवाते हैं कि उसके कारण बहुत बच्चे आ जाएंगे और उनके पास जगह की कमी है। इसी बात को जामिया खैरुन्निसा की प्रधानाचार्या भी कहती हैं कि हमारे पास स्रोतों की बहुत कमी है। इसी कारण छात्राओं की संख्या में वृद्धि नहीं हो पाती है।

मदरसों का पाठ्यक्रम

सभी मदरसों का पाठ्यक्रम अलग-अलग विचारधाराओं पर आधारित है, परंतु सभी में पढ़ाए जाने वाले विषय लगभग समान हैं। सभी मदरसों में धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक शिक्षा भी दी जाती है। धार्मिक शिक्षा में कुरआन, हदीस, फ़िक्ह, तफ़सीर, तारीख़, अरबी साहित्य, फ़ारसी आदि विषय तथा आधुनिक शिक्षा में, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गृह विज्ञान, गणित, अँग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू तथा अरबी साहित्य विषय शामिल हैं। यद्यपि इन मदरसों में अधिकतर पाठ्यक्रम समान हैं परंतु कुछ किताबें भिन्न-भिन्न भी हैं। जिसकी अन्य मदरसों में शिक्षा नहीं दी जाती है। जैसे मदरसा जामियतुल बनात में 'बहिश्ती ज़ेवर' तथा 'उम्मत की मिसाली माए' नामक पुस्तकें पाठ्यक्रम में शामिल हैं। आधुनिक शिक्षा के लिए उपरोक्त सभी मदरसों के पाठ्यक्रमों में एन.सी.ई.आर.टी. की उर्दू माध्यम की पाठ्यपुस्तकें शामिल हैं। हिंदी तथा अँग्रेज़ी विषयों की किताबें भी एन.सी.ई.आर.टी. की ही पढ़ाई जाती हैं। सभी मदरसों में धार्मिक तथा आधुनिक शिक्षा उर्दू माध्यम के अंतर्गत दी जाती है।

³ नाज़िम—व्यवस्थापक, प्रबंधक, प्रधानाचार्य

⁴ मौलवियत—दसवीं कक्षा का समानांतर

लड़कियों द्वारा शिक्षा त्यागने (ड्रॉपआउट) के कारण

अधिकांशतः सभी मदरसों में लड़कियों की शिक्षा छूटने के कारण एक जैसे ही हैं। उपरोक्त चारों मदरसों के नाज़िमों³ से वार्तालाप करने पर लड़कियों की पढ़ाई छूटने के जो कारण सामने आए हैं वे इस प्रकार हैं—

सबसे प्रथम समस्या सामाजिक व आर्थिक स्थिति की है। मदरसों में छात्राएँ अधिकतर निर्धन परिवारों से आती हैं, इसलिए पैसे की कमी के कारण उन्हें पढ़ाई छोड़कर जाना पड़ता है, जबकि उनमें बहुत-सी लड़कियाँ अपनी शिक्षा आगे भी जारी रखना चाहती हैं। दूसरी समस्या यह कि माँ-बाप भी इतने जागरूक नहीं हैं। वे अब भी समाज में शिक्षा के महत्व को नहीं समझ पा रहे हैं तथा लड़कियों की पढ़ाई बीच में ही छुड़वा देते हैं। इस प्रकार लड़कियों को अपनी आगे की शिक्षा के लिए परिवार द्वारा सहयोग नहीं मिल पाता है। तीसरी समस्या, लड़कियों की शादी (निकाह) की आ जाती है। अधिकतर मौलवियत⁴ (10वीं) के बाद ही लड़कियों की शादी कर दी जाती है तथा अधिकांशतः लड़कियाँ शादी के बाद नहीं पढ़ पाती हैं और वे केवल गृहणी बनकर रह जाती हैं एवं आगे की शिक्षा प्राप्त करने का साहस नहीं जुटा पातीं। लेकिन कुछ ऐसी भी लड़कियाँ हैं जो अपनी शिक्षा को शादी के बाद भी जारी रखती हैं। चौथा कारण यह है कि प्रायः माता-पिता अपनी लड़कियों को धार्मिक शिक्षा से अवगत कराना चाहते हैं, इसलिए वे मदरसों में लड़कियों का

दाखिला करवा देते हैं। उसमें से कुछ लड़कियाँ अँग्रेजी माध्यम स्कूलों से भी आती हैं जिनको अरबी, फ़ारसी आदि समझने में कठिनाई होती है, तो वे भी पढ़ाई छोड़कर चली जाती हैं और अपनी आगे की शिक्षा अँग्रेजी माध्यम के अंतर्गत आधुनिक स्कूलों के द्वारा ग्रहण करती हैं साथ ही निजी तौर पर धार्मिक शिक्षा भी अँग्रेजी भाषा में ही पढ़ती हैं।

इस प्रकार पैसों की कमी के कारण और परिवार द्वारा सहयोग न मिलने के कारण, छात्राएँ ड्रॉपआउट हो जाती हैं। ड्रॉपआउट होने वाली अधिकाँश छात्राएँ मौलवियत तक ही पहुँच पाती हैं। इसके अतिरिक्त वे किसी न किसी व्यवसायिक केंद्र से प्रशिक्षण कोर्स करती रहती हैं और कुछ अपनी जद्दोजहद से आगे की शिक्षा प्राइवेट माध्यम से प्राप्त करने में सफल भी हो जाती हैं। परन्तु इतने कारणों के बावजूद भी 'जामियतुल बनात' के संस्थापक का कहना है कि उनके मदरसे में जो लड़कियाँ पढ़ने के लिए आती हैं उनमें से लगभग 90% आलमियत पूर्ण करके ही जाती हैं। मदरसा जामिया⁶ खैरूनिसा, महाद उम्मे सलमा और आयशा सिद्दीका शरीयत कॉलेज में भी स्थिति लगभग समान ही है।

मदरसों में भौतिक सुविधाएँ

सभी मदरसों का इंफ़रास्ट्रक्चर अलग-अलग है। जहाँ तक जामियतुल बनात⁷ और आयशा सिद्दीका की बात है तो वे बहुत अधिक विकसित कहे जा सकते हैं। जामियतुल बनात चार मंजिला भवन है जबकि आयशा सिद्दीका शरीयत कालेज छः मंजिला

भवन है, मदरसा महाद उम्मे सलमा भी चार मंजिला भवन है और मदरसा जामिया खैरूनिसा केवल दो मंजिलीय इमारत है, लेकिन दोनों ही मदरसे बहुत छोटी-सी जगह पर स्थित हैं। केवल जामियतुल बनात⁷ और आयशा सिद्दीका मदरसों में छात्रवास की सुविधा है और दोनों ही मदरसे काफी बड़े क्षेत्र में स्थापित हैं। दोनों ही मदरसों में कक्षाएँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं, हवा व रौशनी के लिए काफी बड़े-बड़े रौशनदान तथा खिड़कियाँ हैं। बिजली के चले जाने पर जनरेटर तथा इनवर्टर का पूरा प्रबंध है ताकि शिक्षकों तथा छात्राओं को कोई असुविधा न हो। यहाँ पर छात्रावास सुविधाएँ भी काफी अच्छी हैं। इन दोनों मदरसों के अतिरिक्त कहने को तो मदरसा महाद उम्मे सलमा चार



मदरसा जामिया खैरूनिसा में एक ही कमरे में दो कक्षाओं की छात्राएँ बैठी हुई

बहुमंजिली तथा जामिया खैरूनिसा दो बहुमंजिली इमारत है लेकिन ये दोनों मदरसे बहुत छोटी जगह पर स्थापित हैं तथा दोनों मदरसों की कक्षाएँ भी काफी छोटी हैं।

⁵ जद्दोजहद—प्रयास, कठिन परिश्रम

⁶ जामिया—विश्वविद्यालय, यूनिवर्सिटी, समाज

⁷ बनात—बिन्त का बहुवचन, बेटियाँ, पुत्रियाँ

जामिया खैरुनिसा में तो स्थिति यह है कि एक ही कमरे में दो-दो कक्षाओं का प्रबंध है। दोनों ही मदरसों में हवा और रौशनी का भी कोई इन्तज़ाम नहीं है। ऐसे में बिजली के चले जाने पर शिक्षकों तथा छात्राओं दोनों को बहुत असुविधा होती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जामिया खैरुनिसा व महाद उम्मे सलमा दोनों ही मदरसों में जामियतुल बनात और आयशा सिद्दीका मदरसों की तुलना में स्रोतों की बहुत अधिक कमी है।

मदरसों का कक्षा अभ्यास

जहाँ तक मदरसों में कक्षा अभ्यास का प्रश्न है तो सामान्यतः प्रत्येक मदरसे में पर्दा प्रथा है। यद्यपि इन चारों मदरसों में महिला शिक्षिकाओं की संख्या अधिक है तथा पुरुष शिक्षक बहुत कम हैं तथापि मदरसा महाद उम्मे सलमा तथा मदरसा जामियतुल बनात में पर्दे का बहुत कठोरता से नियमन किया जाता है। इन मदरसों में पुरुष शिक्षक पर्दे की ओट से ही लड़कियों को शिक्षा देते हैं तथा लड़कियाँ पुरुष शिक्षकों के सामने नहीं आती हैं।



इस फोटो द्वारा मदरसा जामिया खैरुनिसा में स्रोतों की कमी को देखा जा सकता है

मदरसा जामियतुल बनात में तो शिक्षक कक्षा अभ्यास के दौरान व्याख्यान देने हेतु माइक का प्रयोग करते हैं किसी दूसरे कमरे से तथा कक्षा में लड़कियों के लिए शिक्षक द्वारा दिया जा रहा व्याख्यान सुनने की पूरी सुविधा होती है। कक्षा अभ्यास के दौरान कक्षा में देख-रेख के लिए एक शिक्षिका उपस्थित रहती हैं। यदि छात्राओं को कोई प्रश्न शिक्षक से पूछना होता है तो उसके लिए भी वे माइक का ही प्रयोग करती हैं। इस प्रकार मदरसा जामियतुल बनात में पुरुष शिक्षकों तथा छात्राओं के बीच अंतःक्रिया माइक के द्वारा होती है। मदरसा महाद उम्मे सलमा में भी छात्राएँ पुरुष अध्यापक का सामना नहीं करती हैं। इस मदरसे में लाउडस्पीकर या माइक का प्रबंध तो नहीं है परंतु कक्षा में पुरुष शिक्षक तथा छात्राओं के बीच एक बड़ा पर्दा कर दिया जाता है तथा इस प्रकार वे पर्दे की एक ओर अलग रहकर शिक्षा ग्रहण करती हैं। मदरसा आयशा सिद्दीका शरीयत कॉलेज में छात्राएँ कक्षा में पुरुष शिक्षकों के सामने पढ़ती हैं परन्तु इस मदरसे में छात्राओं के लिए बुर्का तथा चेहरे को



मदरसा जामियतुल बनात अल इस्लामिया में कक्षा अभ्यास के दौरान शिक्षक माइक के द्वारा किसी दूसरे कमरे से छात्राओं को व्याख्यान देते हुए



कक्षा अभ्यास के दौरान मदरसा जामिया खैरुनिसा की छात्राएँ पुरुष शिक्षक द्वारा दिए जा रहे व्याख्यान को सुनते हुए

छुपाना (cover) अनिवार्य है। इस मदरसे में कक्षा अभ्यास के दौरान शिक्षकों द्वारा ब्लैक बोर्ड का प्रयोग होता है।

मदरसा जामिया खैरुनिसा में कक्षा अभ्यास के दौरान छात्राएँ पुरुष शिक्षकों के सामने कक्षा में ही बैठती हैं तथा जो पर्दा (cover) करना चाहती हैं वे पर्दा करती हैं। इस मदरसे में दूसरे मदरसों के समान पर्दा अनिवार्य नहीं है परंतु सिर पर स्कॉर्फ़ लगाना अनिवार्य है, अर्थात् इस मदरसे में नक्काब⁸ अनिवार्य नहीं है परंतु हिजाब⁹ अनिवार्य है। इस मदरसे में भी कक्षा अभ्यास के दौरान शिक्षकों द्वारा ब्लैकबोर्ड का प्रयोग होता है।

छात्राओं के साथ वार्तालाप

सर्वेक्षण के दौरान छात्राओं के साथ वार्तालाप करते समय उनसे कुछ प्रश्नों को पूछा गया, जैसे—क्या वे अपने घर में लड़की व लड़के के मध्य किसी प्रकार के भेदभाव को देखती हैं? क्या ऐसा है कि खाने-पीने, घूमने-फिरने, शिक्षा या कपड़ों आदि के संबंध में परिवार द्वारा लड़कियों की तुलना में

लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है? क्या वे अपने शिक्षण संस्थान में शिक्षकों द्वारा छात्राओं के प्रति किसी भेदभाव को देखती हैं? जहाँ तक परिवार द्वारा भेदभाव की बात है, चाहे वह शिक्षा या घूमने-फिरने के संबंध में हो या फिर खाने-पीने और कपड़ों के संबंध में, सभी लड़कियाँ इस बात से इंकार करती हैं कि उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव परिवार द्वारा होता है। छात्राएँ अपने शिक्षण संस्थानों अथवा मदरसों से काफी संतुष्ट हैं तथा वे शिक्षकों की शिक्षण पद्धति तथा उनके आचरण व व्यवहार की ओर आकर्षित भी हैं। इसके अतिरिक्त सभी छात्राएँ शिक्षा की ओर प्रेरित भी हैं और वे आगे की शिक्षा भी ग्रहण करना चाहती हैं। लैंगिक परिप्रेक्ष्य के संबंध में भी अधिकतर छात्राएँ रूढ़िवादी मानसिकता से स्वतंत्र हैं। परन्तु इन बातों के अतिरिक्त छात्राओं ने बताया कि अधिकतर छात्राएँ निर्धन परिवारों से संबंधित हैं तथा उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है, छात्राएँ बहुत मुश्किल से अपनी फ्रीस तक दे पाती हैं। इसके अतिरिक्त सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त अवलोकन यह बताता है कि यद्यपि मदरसों में लड़कियाँ अधिकांश बातों से संतुष्ट हैं लेकिन उनके अंदर आत्मविश्वास की बहुत कमी है। यहाँ तक कि वे अपने सशक्तिकरण तथा स्वतंत्रता के संबंध में भी पूरी तरह से जागरूक नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने प्रश्नावली में पूछे गए शिक्षकों से संबंधित प्रश्नों के संबंध में सकारात्मक उत्तर भी दिए हैं, परन्तु वास्तविकता उससे परे है, वे शिक्षकों के व्यवहार से बहुत खुश नहीं हैं। वे शिक्षकों की अभिवृत्ति में एक रूढ़िवादी मानसिकता

⁸ नक्काब—मुखावरण, बुर्का

⁹ हिजाब—पर्दा, घूँघट

को देखती हैं। यही बात वे अपने घर में भी देखती हैं। यद्यपि छात्राओं ने अपने घर व परिवार के संबंध में भी सकारात्मक उत्तर दिया लेकिन हमारा अवलोकन और विश्लेषण यह कहता है कि लड़कियाँ न ही किसी फ़ैसले में भागीदार बनती हैं और न वे अपनी स्वतंत्रता के बारे में ही सोचती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके घर/परिवारों में लड़की व लड़के के मध्य भेदभाव भी किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि परिवार तथा शिक्षक दोनों ही लड़कियों के सशक्तिकरण तथा उनके प्रति सामाजिक जागरूकता लाने में बहुत अधिक सक्षम नहीं हैं।

शिक्षकों तथा प्रधानाध्यापकों के साथ वार्तालाप

चारों मदरसों के शिक्षकों से वार्तालाप करने पर पता चला कि मदरसों में शिक्षा देने वाले सभी शिक्षक बी.ए. से कम योग्यता नहीं रखते हैं और कुछ एम.ए. भी किए हुए हैं। अधिकतर शिक्षक सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से निर्धन हैं। उनको मदरसे की ओर से मात्र 1000 से 3000 के बीच में मासिक वेतन मिलता है, जिस कारण उनका गुजारा होना मुश्किल है। जबकि प्रधानशिक्षक ₹ 5000 तक मासिक वेतन प्राप्त करते हैं। लैंगिक मुद्दों से संबंधित अधिकाँश मुद्दों पर शिक्षकों का नज़रिया संकुचित है। यद्यपि वे शिक्षा, स्वास्थ्य तथा खाने-पीने आदि के बारे में अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण रखते हैं लेकिन स्वतंत्रता, व्यवसाय, दक्षता आदि के संबंध में वे लड़कियों की तुलना

में लड़कों को ही प्राथमिकता देते हैं। स्वतंत्रता के संबंध में उनका कहना है कि लड़के आज़ाद होते हैं, वे कहीं भी आ जा सकते हैं लेकिन लड़कियों की स्वतंत्रता का दायरा सीमित है। इसी प्रकार के विचार वे व्यवसाय तथा दक्षता के संबंध में भी रखते हैं। उनका मानना है कि प्रत्येक व्यवसाय लड़कियाँ नहीं अपना सकतीं जबकि लड़के किसी भी व्यवसाय को कर सकते हैं और न ही लड़कियों में लड़कों के जैसी दक्षता होती है। उनका मानना है कि लड़के ज़्यादा दक्षता रखते हैं जबकि लड़कियों में समझ की कमी होती है। इससे पता चलता है कि लैंगिक मुद्दों के संबंध में शिक्षक भेदभाव की प्रवृत्ति रखते हैं। शिक्षक मदरसों की शिक्षा से संतुष्ट हैं और मदरसों की शिक्षा को छात्राओं के उत्थान व विकास के लिए लाभदायक मानते हैं। उनका कहना है कि मदरसों से फ़रागत¹⁰ के बाद लड़कियाँ आगे की शिक्षा भी ग्रहण कर रही हैं तथा अन्य क्षेत्रों में सफलता भी प्राप्त कर रही हैं। पर्दे के संबंध में सभी शिक्षकों का कहना है कि इस्लाम के अनुसार पर्दा अनिवार्य है लेकिन पर्दे का चलन किसी मदरसे में नक़ाब है तो किसी में हिजाब, पर पर्दा अवश्य है। सभी प्रधानाध्यापकों का कहना है कि मदरसों में अधिकतर लड़कियाँ निर्धन परिवारों से हैं जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। इसलिए जो भी लड़कियाँ मदरसों में आती हैं उन्हें मासिक शुल्क में काफ़ी रियायत दी जाती है और कुछ तो मासिक शुल्क दे भी नहीं पाती हैं उन्हें मदरसे की ओर से वज़ीफ़े¹¹ के पैसों से

¹⁰ फ़रागत—शिक्षा पूर्ण करने के बाद छुटकारा पाना, फुरसत, अवकाश, मुक्ति

¹¹ वज़ीफ़ा—वह पूँजी जो ग़रीब छात्र/छात्राओं को उनकी शिक्षा खर्च हेतु मदरसों की ओर से दी जाती है। छात्रवृत्ति, स्कॉलरशिप

सहायता दी जाती है, अर्थात् शिक्षा का व्यय मदरसे वहन करते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त वार्तालाप करने पर पता चलता है कि जामिया नगर में स्थित ये मदरसे लड़कियों की शिक्षा, उनके उत्थान तथा विकास के लिए बहुत प्रयत्नशील हैं तथा अब तक मदरसों ने काफ़ी सराहनीय कार्य भी किए हैं लेकिन अभी भी ज़्यादा बेहतर तरीके से कार्य करने की आवश्यकता और शिक्षा में गुणवत्ता लाने की ज़रूरत है ताकि लड़कियाँ अपनी आगामी शिक्षा के प्रति सचेत हो सकें और भविष्य में एक सक्षम व्यक्ति बन सकें।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि जामिया नगर में स्थित उपरोक्त चारों मदरसे यद्यपि मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा व विकास के लिए कार्यरत हैं लेकिन मदरसे अभी भी बहुत-सी दिक्कतों से गुज़र रहे हैं। जैसे मदरसों के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक शिक्षा भी है लेकिन यह आधुनिक शिक्षा आज के संदर्भ में कम उपयुक्त स्तर की है। उपरोक्त सभी मदरसे रजिस्टर्ड हैं तथा मदरसे अपनी ओर से ही छात्राओं को प्रमाणपत्र देते हैं और दसवीं तथा बारहवीं की बोर्ड परिक्षाएँ मदरसों द्वारा जामिया मिल्लिया इस्लामिया बोर्ड से दिलवायी जाती हैं। ऐसे में लड़कियों को दोहरी मेहनत करनी पड़ती है। यद्यपि मौलवियत दसवीं कक्षा का और आलमियत बारहवीं कक्षा का समानांतर है। इसलिए मदरसों में यह दोनों कक्षाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि दोनों कक्षाओं को उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही मौलवियत

तथा आलमियत की डिग्री दी जाती है। ऐसे में लड़कियों को किसी अन्य बोर्ड परीक्षाओं की तैयारी करना उनके लिए दोहरा भार है जिसके कारण लड़कियों के मस्तिष्क पर गहरा दबाव भी पड़ता है।

दूसरे मदरसों की लड़कियों में आत्मविश्वास की कमी भी है, वह अपने प्रति उत्थान, विकास तथा सशक्तिकरण के संबंध में नहीं सोच पाती हैं। यहाँ तक कि कुछ लड़कियों को इन शब्दों के बारे में पता ही नहीं है। वे अभी भी रूढ़िवादी मानसिकता से ग्रस्त हैं या उनकी सोच का दायरा संकुचित है। लेकिन उनकी इस सोच के पीछे भी दो कारण हैं। एक तो यह कि उन्होंने अपने घरों में भी भेदभाव की प्रवृत्ति को देखा है, लड़कियों की तुलना में लड़कों को अधिक प्राथमिकता देते हुए देखा है चाहे वह स्वतंत्रता के संबंध में हो या फिर व्यवसाय या विकासात्मक रास्तों के संबंध में। इसी प्रकार मदरसों में उन्हें शिक्षकों का नज़रिया भी लड़कियों के प्रति बहुत अधिक विस्तृत नहीं दिखा अर्थात् मदरसों से भी उन्हें यही बातें मिली कि लड़कियों का दायरा सीमित होता है। शायद इन्हीं कारणों से वे भी अपनी सोच का दायरा विकसित नहीं कर सकीं जिसके परिणामस्वरूप वे भी रूढ़िवादी मानसिकता से ग्रस्त ही रहीं। इन दो कारणों के अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी है कि मदरसों में अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षित नहीं होते हैं, वे कोई विशेष प्रशिक्षण भी नहीं करते हैं। इसलिए उनके व्यवसायिक विकास में कमी रहती है। ऐसे में वे जिस सोच को लेकर मदरसों में आते हैं उसी के अनुसार पढ़ाते हैं। इसी कारण लड़कियाँ भी

अपना विकास नहीं कर पातीं। वे भी अपने शिक्षकों के समान एक विशेष सोच तक सीमित रहती हैं। यद्यपि मदरसों में धार्मिक शिक्षा तथा आधुनिक शिक्षा के अंतर्गत लैंगिक मुद्दों के संबंध में भी प्रकाश डाला जाता है। देखने में तो दोनों शैक्षिक पाठ्यक्रमों में सैद्धान्तिक रूप से कोई भेदभाव नहीं है, दोनों ही लिंगों को समानता की दृष्टि से देखा जाता है लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं है। व्यवहार में दोनों लिंगों के प्रति भेदभाव की भावना भी पायी जाती है और भेदभाव होता भी है। अन्त में उपरोक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि मदरसे वास्तव में बहुत-सी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। सभी मदरसों में हमेशा आर्थिक समस्या बनी रहती है जिसके कारण वे शिक्षा में अधिक गुणवत्ता व लड़कियों का पूर्ण रूप से विकास नहीं कर पा रहे हैं। परन्तु अनेक समस्याओं के बावजूद वह जिस प्रकार लड़कियों की प्रगति व उन्नति के बारे में सोच रहे हैं या उस पर अमल कर रहे हैं, उनका यह कार्य सराहनीय कहा जा सकता है।

संदर्भ

- इंजीनियर, असगर अली. 2001. 'इस्लाम वुमेन एंड जेंडर जस्टिस', ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- जयरथ, सुषमा. 2009. 'मदरसा एजुकेशन इन इण्डिया: द जेंडर पर्सपेक्टिव'—पेपर प्रेजेंटेटिड इन द नेशनल सेमीनार ऑन 'इक्विटी एंड एजुकेशन पॉलिसी इश्यूज एंड चैलेंजस', ऑर्गेनाइज्ड बाई सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन (सी.आई.ई.), दिल्ली यूनिवर्सिटी
- जयरथ, सुषमा, मो. नूर आलम, 'मध्य प्रदेश के मकतब—एक नवीन स्वरूप' प्राइमरी शिक्षक, जनवरी 2009
- मॉडर्नाइजेशन ऑफ़ एम.पी. मदरसास एंड मकतब्स, द मिली गज़ट, जनवरी 2009
- विकलमेन, एम.जे. 2005 'रीचिंग द माइंड्स ऑफ़ यंग मुस्लिम वुमेन, गर्ल्स मदरसा इन इंडिया', मानक पब्लिकेशंस
- सिकंदर, योगिंदर. 2005. 'बेस्चन ऑफ़ द बिलिवर्स—मदरसा एंड इस्लामिक एजुकेशन इन इंडिया', पेंग्विन इण्डिया

आकलन की पारम्परिक प्रक्रिया*

असफल कौन—विद्यार्थी या व्यवस्था?

एन.सी.ई.आर.टी.

कक्षा में पाठ्यपुस्तक खुली, शिक्षिका ने निर्देश दिए अध्याय को पठन करने के। पठन के पश्चात् गृह कार्य और फिर कुछ दिनों बाद उसी अध्याय की इकाई परीक्षा। गुणवत्ता शिक्षा पर तमाम गोष्ठियों, बैठकों, दस्तावेजों के बावजूद हो रहा है जैसा ऊपर लिखा गया है। यह तो हुई पढ़ने-पढ़ाने की बात। इसके बाद जो बच्चों के सीखने का आकलन किया जाता है वह कुछ अलग ही कहानी कहता है। जिस तरह के प्रश्न दिए जाते हैं और फिर बच्चों द्वारा दिए गए उत्तरों को जिस तरह से आकलित किया जाता है उसमें परिणाम काफी असंतोषजनक होते हैं तथा सफलता का अनुभव देने के लिए तैयार की गई व्यवस्था अपने ही विद्यार्थियों में असफलता के भाव भर देती है और स्वयं का प्रश्नचिह्न कि असफल कौन—विद्यार्थी या व्यवस्था? इस विषय पर चर्चा आगे बढ़ाने के उद्देश्य से यह लेख यहाँ प्रस्तुत है जिसे एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा आरम्भ किए गए प्राथमिक कक्षाओं में आकलन विषय पर संवादों की कड़ियों में से लिया गया है।

नगर निगम के एक प्राथमिक विद्यालय में 'प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन की प्रक्रिया' नामक विषय पर एक बैठक का आयोजन किया गया था। इस बैठक में भाग ले रहे थे—चौथी और पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी तथा उनके अभिभावक। साथ ही पहली से पाँचवी तक की कक्षाओं के अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी। अभिवादन संबंधी औपचारिकताओं

को पूरा करने के बाद बैठक की संचालिका ने सभी को एक-एक पर्ची दी। पर्चियों के रंग अलग-अलग थे। पर्चियाँ बाँटने के बाद कहा गया कि संचालिका एक शब्द बोलेंगी। उस शब्द को सुनकर मन में जो भाव पहले कौंधे, उसे पर्ची पर लिख दिया जाए।
शब्द था 'परीक्षा'

* आकलन स्रोत पुस्तिका (प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए) भाषा हिंदी एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, जनवरी 2009 से साभार प्रकाशित (पृ. 25-30)

मात्र एक मिनट का समय देकर पर्चियाँ वापस ले लीं गईं। पर्चियों में लिखे भाव जानने के लिए आप उत्सुक होंगे। विद्यार्थियों की पर्चियों पर कुछ इस प्रकार की टिप्पणियाँ थीं—**पास या फेल, ओफ! घोटे लगाने का समय आ गया, खेल-कूद की छुट्टी, टी.वी. पर ताला, थोड़े दिन घर के काम से छुटकारा, रटटू तोते के तो मजे आ गए, ज्योमैट्री बॉक्स की तो तैयारी कर लो, रोज वाली कॉपी की बात मैडम वाली कॉपी पर, घोटे लगाओ नंबर पाओ, नालायक नंबर वन, लाल-लाल गोले, जीरो बटा संनाटा, पेट में मरोड़, आदि-आदि।** शिक्षकों की पर्चियों पर कुछ इस तरह के भाव थे—प्रश्न पत्र बनाओ, दस-दस लिस्टें बनाओ, गलतियाँ निकालो, नकल पकडो, बेतुकी एक्सरसाइज, नो यूज, चेकिंग, उच्च रक्तचाप, घबराहट के दिन आदि-आदि। अब आप यह भी जानना चाहेंगे कि अभिभावकों ने अपनी पर्चियों में क्या-क्या लिखा होगा। (बहुत से अभिभावक लिखना नहीं जानते थे। उन्होंने मौखिक रूप से अपनी बात कही।) **तनाव, प्रतिष्ठा का सवाल, उम्मीदों पर पानी नहीं फिर जाए, टेंशन, ट्यूशन का इंतजाम, मोमबत्ती और लालटेन का जुगाड़, बिना देखे लिखना** आदि। शायद हम सबकी प्रतिक्रियाएँ इनसे अलग नहीं होंगी। दरअसल परीक्षा का स्वरूप कुछ है ही इस प्रकार का कि नकारात्मक भाव यानी कि न चाहने वाली बातें ही सामने अधिक आती हैं।

बच्चों को स्कूल में प्रवेश लेते ही पता चल जाता है कि स्कूल में सबसे महत्वपूर्ण बात है—परीक्षा पास करना। दो-तीन दिन के भीतर ही वे

इस कड़वी सच्चाई को भाँप लेते हैं कि उन्हें जो कुछ भी सिखाया-पढ़ाया जाएगा उसका 'टेस्ट' होगा और 'टेस्ट' के नतीजे ही उनकी योग्यता का सबूत होंगे। वे इस बात पर भी विचार करते होंगे कि उनकी छोटी-मोटी किताबों के पाठों में ऐसा कौन-सा हौवा छिपा है जिसके सामने उनके बहुत से करिश्माई तजुर्बे बौने हो जाते हैं, जैसे—सीलन भरी मुँडेरों पर कुशलतापूर्वक चढ़कर पतंगबाजी करना, छोटे-छोटे हाथों से अखबारी कागज के लिफाफे बनाना, जलावन की लकड़ियाँ चुनकर लाना, पशुओं को चराई करवाना, सार्वजनिक नल से पानी भरकर लाना, घर-बाहर के सैंकड़ों कार्यों को करना, आसपास की पचासों घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर माता-पिता तक पहुँचाना, भीड़ भरी सड़के पार कर लेना और सबसे बड़ी बात जटिल हालात में भी जी लेना (सरवाइव कर पाना)।

ऐसी कुशलताओं के धनी बच्चे आखिर किताबों की सूचनाओं के किले में प्रवेश क्यों नहीं कर पाते हैं और जो प्रवेश पाते हैं वे उन्हे भेद क्यों नहीं पाते।

इस प्रकार के सवाल सभी के मन में उठते ही होंगे और सभी इस बात पर भी विचार करते होंगे कि तथ्यों की समझ रखने वाले और कठिन से कठिन हालात में भी जी लेने वाले बच्चे स्कूली परीक्षा में असफल क्यों हो जाते हैं।

इसका जवाब हासिल करने के लिए जरूरी है कि हम परीक्षा की मौजूदा आकलन प्रक्रिया को टटोलें।

- आकलन के संबंध में अभी तक जो कुछ भी हो रहा है वह पूरी तरह से औपचारिक

ताने-बाने से गुँथा हुआ है। बाकायदा निश्चित अवधि के अंतराल पर दिन तय किए जाते हैं और घोषणा की जाती है कि अमुक दिन आपकी मौखिक/लिखित परीक्षा होगी। इस औपचारिक घोषणा के डरावने रूप को पहली कक्षा के बच्चे भी सहते हैं और ऊपर की कक्षाओं के बच्चे भी। इस प्रक्रिया में मूल्यांकन सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा ही नहीं आता। आमतौर पर सीखने-सीखाने की प्रक्रिया के दौरान ही अवलोकन, संवाद, समूह कार्य आदि के माध्यम से विद्यार्थी के सीखने की प्रगति या व्यवहार में परिवर्तन को आँका जा सकता है पर 'अवलोकन' और 'संवाद' को तो पूरी तरह नकार दिया जाता है।

- औपचारिक घोषणा से उपजे भय में बढ़ोतरी करती है 'प्रश्न संस्कृति'। हर प्रकार की परीक्षा का मुख्य बिंदु होता है-'प्रश्न पत्र'। बच्चे क्या सीख पाए हैं ये जानने के लिए वर्ष को तीन बड़ी इकाइयों में बाँट दिया गया है। (कहीं-कहीं इन तीन बड़ी इकाइयों के साथ-साथ छोटी-बड़ी मासिक इकाइयाँ भी होती हैं।) तीन बड़ी इकाइयाँ कहलाती हैं।-यूनिट-1, यूनिट-2, यूनिट-3। सरकारी विद्यालय के बच्चे हो या प्राइवेट विद्यालय के बच्चे, वे इन्हीं 'यूटी' (UT) के नाम से जाने जाते हैं। शायद आप सुनते भी होंगे- आजकल यूटी के कारण दिमाग सुन्न हो गया है।
- हर यूटी का अपना एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार कहना कहीं अधिक उपयुक्त होगा कि हर यूनिट में

कितने और कौन से पाठों के आधार पर परीक्षा ली जाए, यह पाठ्यक्रम कहीं किसी केंद्र से तय होकर आता है। अब यह सवाल तो जरूर उठना चाहिए कि क्या यह 'केंद्र' इस बात की जानकारी रखता है कि प्रत्येक विद्यालय की सभी कक्षाओं में विद्यार्थी किस गति से सीख रहे हैं, क्या-क्या सीख चुके हैं, कहाँ-कहाँ दिक्कतें आ रही हैं। दूसरा सवाल यह भी कि एक यूनिट के भीतर आने वाले पाठ या गतिविधियों का संबंध दूसरी यूनिट के अंतर्गत आने वाले पाठ से अगर है तो क्या ऐसे पहली यूनिट की परीक्षा से जोड़ा जाता है? दोनों सवालों के उत्तर 'नहीं' में ही हैं।

- यह जरूरी है कि हर विद्यालय के अध्यापक को स्वतंत्रता हो कि वह पहली यूनिट परीक्षा में किन-किन पाठों के आधार पर और किन तकनीकों एवं गतिविधियों को आकलन का बिंदु बनाना चाहेगी/चाहेगा। वैसे तो सजग अध्यापक सीखने-सीखाने की प्रक्रिया के साथ ही यह जाँच करते चलते हैं कि मेरे विद्यार्थी क्या सीख पा रहे हैं और क्या नहीं सीख पा रहे हैं, किस बिंदु पर उन्हें किस तरह की दिक्कतें आ रही हैं और उन दिक्कतों को कैसे दूर किया जा सकता है।
- यह तो रही पाठों के चयन या निर्धारण की बात। अब प्रश्न बनाने की बात आती है। पाठ के किसी भी कोने से संदर्भ रहित कोई सा भी प्रश्न उठा लिया जाता है। घिसे-पिटे तरीके से पुनः उसकी प्रस्तुति कर दी जाती

है। प्रश्न बनाने की प्रक्रिया में यूनिट के सभी अध्यायों को शामिल करने का असफल प्रयास किया जाता है। जिसमें वास्तविक सृजनात्मक चिंतन कहीं-कहीं झलकता। प्रश्न कुछ इस प्रकार के होते हैं। जो रटने के कौशल पर आधारित होते हैं और इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विद्यार्थियों को न तो सोचने-समझने की जरूरत पड़ती है और न ही अपने दैनिक जीवन से जोड़ने की। वे विद्यार्थियों के अनुभवों से परे होते हैं इसलिए वे विद्यार्थियों को वस्तु/घटना के संबंध में, अपनी धारणा के संबंध में, अपनी धारणा बनाने और अपने विचारों को प्रतिबिंबित तथा प्रमाणित करने से रोकते हैं। रटने के कौशल में प्रवीण विद्यार्थी इन प्रश्नों के उत्तरों की यांत्रिक प्रस्तुति कर 'होनहार', 'मेधावी' जैसे खिताब पाते हैं और जो ऐसा नहीं कर पाते वे असफलता के डंक की चुभन को सहते-सहते सीखने की प्रक्रिया से ही बाहर हो जाते हैं। इन प्रश्नों-पत्रों में समस्या निराकरण, विवेकपूर्ण सोच, कल्पनाशीलता को बढ़ाने वाले, संदर्भ को विस्तार देने वाले, विश्लेषण, वर्गीकरण करने की क्षमता का पोषण करने वाले प्रश्नों का लगभग अभाव ही दिखाई देता है। उदाहरण के तौर पर—

प्लेटफार्म पर उतरकर उसने किसको बुलाया?

अब देखिए, क्या यहाँ किसी तरह का संदर्भ नज़र आ रहा है? नहीं न! आपसे ही अगर यह सवाल पूछ लिया जाए तो आप क्या जवाब देंगे? ऐसे ही सवाल की एक और बानगी देखिए—

राजा ने किस रंग का चोगा पहना था?

उपर्युक्त सवाल पूछकर आप कौन-सा भाषायी कौशल जाँचना चाह रहे हैं? सिर्फ विद्यार्थी के पठनकौशल का ही न, क्योंकि चोगे का रंग उसने पाठ में पढ़ा होगा। अब अगर इस सवाल को कुछ इस तरह से पूछें—

राजा को लाल रंग का चोगा ही क्यों पसंद था?

भले ही सीधे-सपाट तरीके से उपर्युक्त सवाल का उत्तर पाठ में न मिल पाए पर अगर विद्यार्थी ने पाठ को समझकर पढ़ा है तो अपनी कल्पना, तर्क शक्ति और अनुमान के आधार पर कारण खोज ही लेगा कि राजा को लाल रंग का चोगा क्यों पसंद था।

अब बात करेंगे प्रश्नों के साथ-साथ अँकों की। पूरा प्रश्न-पत्र एक निश्चित अँक सीमा में बँधा हुआ होता है और अँकों की सहूलियत को मद्देनज़र रखते हुए प्रश्नों से प्राप्त होने वालों उत्तरों की सीमा भी तय हो जाती है।

उदाहरण के तौर पर—

- *जंगल में रहने वाले दो जानवरों के नाम बताइये।*
- *मदर टेरेंसा के चरित्र की तीन विशेषताएँ लिखिए।*
- *जल के चार स्रोतों के नाम बताइये।*
- *वृक्षों से होने वाले पाँच लाभ लिखिए।*
- *जातिवाचक संज्ञा के चार उदाहरण बताइये।*
- *नीचे लिखे शब्दों के दो-दो पर्यायवाची शब्द बताइये।*

उपर्युक्त उदाहरणों में दो, तीन, चार, पाँच की संख्या ने अँक देने/काटने में भले ही सुविधा प्रदान कर दी हो पर विद्यार्थियों की उद्यमिता और विचार करने की क्षमता को उभारने का मौका गँवा दिया है।

कविता के संदर्भ में भी अँकों की सुविधा को ही महत्त्व दिया जाता है, जैसे—

- अपनी पाठ्यपुस्तक से याद की हुई किसी भी कविता की छः पंक्तियाँ लिखो/सुनाओ। यहाँ विद्यार्थी के सामने पाठ्यपुस्तक से ही कविता याद करने और उसे छठी पंक्ति पर ही समाप्त करने की बेबसी है भले ही वह छठी पंक्ति किसी नए अंतरे की शुरुआत क्यों न हो।
- क्या पाठ्यपुस्तक से इतर कोई भी पसंदीदा कविता सुर, लय, ताल, के साथ सुनवाकर हम किसी भी अधिगम अनुभव का आकलन नहीं कर सकते? क्या प्रश्न-पत्र विद्यार्थियों के सजीव अनुभवों को स्थान नहीं दे सकता?

अब बात करते हैं आकलन में भिन्न-भिन्न गतियों और तकनीकों की। हम सभी जानते हैं कि विद्यार्थियों के सीखने की गति अलग-अलग होती है। हर विषयवस्तु को सीखने-सिखाने के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। परंतु मौजूदा मूल्यांकन व्यवस्था में इस अवधारणा का कोई स्थान नहीं है। विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के परीक्षणों की अनुभूति से वंचित रह जाते हैं। पहली और दूसरी कक्षाओं में फिर भी मौखिक परीक्षण को स्थान मिल जाता है पर तीसरी कक्षा के बाद तो लिखित परीक्षा पर ही निर्भरता बनी रहती है। कहीं-कहीं प्रायोगिक कार्य को थोड़ी बहुत तरजीह दे दी जाती है पर वहाँ अध्यापक-अध्यापिकाओं के पूर्वाग्रह उसे बेमानी बना देते हैं। जिन विद्यार्थियों की वाचिक निपुणता लेखन से कहीं ज्यादा अच्छी है, जिनके काम करने की गति तो बहुत धीमी है वे बड़ी सूक्ष्म दृष्टि के साथ करते हैं, जिन

विद्यार्थियों में गहन अवलोकन करने, वर्गीकरण करने, तर्क प्रस्तुत करने, कल्पना करने और व्याख्या करने के कौशल हैं पर रटने की क्षमता का अभाव है, ऐसे विद्यार्थी अँकों की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाते। बहुत-से बच्चे समूह में बेहतर कार्य निष्पादन कर पाते हैं पर हमारी मौजूदा मूल्यांकन प्रक्रिया में ऐसी वैयक्तिक सुविधा का सर्वथा अभाव है।

तीसरी, चौथी तथा पाँचवीं कक्षा के प्रश्न-पत्रों की एक बानगी प्रस्तुत है—

- पहला प्रश्न अनुच्छेद या निबंध लेखन का होता है जिसमें अक्सर विषयों का दायरा बहुत ही सीमित होता है जैसे—*रक्षाबंधन, मेरा प्रिय मित्र, मेरा विद्यालय, ईद, होली, 15 अगस्त।*
- दूसरा प्रश्न-पत्र लेखन से संबंधित है। यहाँ विषय सीमा संकुचित होने के साथ-साथ बहुत हास्यास्पद भी है, जैसे—*बीमार होने पर मुख्याध्यापक को प्रार्थना-पत्र, फीस माफ करने के लिए मुख्याध्यापक को पत्र, बड़े भाई के विवाह के कारण पत्र।*

क्या विद्यार्थियों के मित्र, सगे-संबंधी नहीं होते जिन्हें वे पत्र लिख सकें, क्या किसी स्थिति विशेष में ही पत्र लिखा जाता है, यूँ ही अपने मन की बात या दिलचस्प वाक्या बताने के लिए पत्र नहीं लिखा जा सकता? यदि किसी अभियोजन को सिद्ध करने के लिए पत्र लिखना ही है तो विद्यार्थी क्रीड़ा स्थल, खिलौनों, भ्रमण के आयोजन के संबंध में भी तो मुख्य अध्यापक को पत्र लिख सकते हैं।

अब बारी आती है वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की, जिसमें सही/गलत के निशान लगाने हैं—

- जंगल के जानवर चींटी से परेशान थे।
- हाथी सभी जानवरों से प्यार करता था।
- बूढ़ा कबूतर चतुर था।
- कुएँ के अंदर चाँद था।

सभी कथन पाठ्यपुस्तक पर आधारित हैं। पाठ से थोड़ा भी इधर-उधर हुए तो उत्तर गलत भी हो सकता है। व्याकरण संबंधी प्रश्न कुछ इस प्रकार होते हैं—*संज्ञा या सर्वनाम की परिभाषा लिखकर पाँच उदाहरण दीजिए।*

भाषा की बारीकियाँ कुछ इस प्रकार उभारी जाती हैं—

*नीचे लिखे शब्दों के अर्थ लिखो—
जीमन, शिकायत, भली, आलस*

सार यह है कि पूरे प्रश्न-पत्र में कल्पनाशीलता की कोई गुंजाइश नज़र नहीं आती। बेजान, नीरस-सा प्रश्न-पत्र पूरी मूल्यांकन प्रक्रिया में छाया रहता है। पहली और दूसरी कक्षा में श्रुतलेख एवं सुलेख और पठन करवाया जाता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि तीनों के लिए टूटे-फूटे अलग-अलग गद्यांश चुने जाते हैं। श्रुतलेख में ही सुलेख के अंक दिए जा सकते हैं। पाठ्यपुस्तक से बाहर का गद्य/पद्य पठन के लिए लिया जा सकता है। सीखने की प्रक्रिया के दौरान ही

अवलोकन, मौखिक अभिव्यक्ति, समूह कार्य, काम के प्रति दृष्टिकोण आदि के आधार पर आकलन किया जा सकता है। मौजूदा मूल्यांकन प्रक्रिया में शारीरिक एवं मानसिक रूप से चुनौती वाले बच्चों के लिए भी तिल भर बदलाव की जरूरत नहीं समझी जाती। हाँ, अंक देने में गैर-जरूरी उदारता जरूर दिखाई जाती है—अरे, एक नंबर तो फालतू दे ही दो इसे। बेचारा...। हमें यह समझना जरूरी है कि वे बेचारे नहीं हैं और अँकों के मोहताज भी नहीं। वे हमसे उसी तरह के सामान्य व्यवहार की अपेक्षा करते हैं जैसा कि दूसरों के साथ किया जाता है। वर्तमान मूल्यांकन प्रक्रिया एक प्रकार से कुंठित प्रतियोगिता को जन्म देती है।

इस प्रतियोगिता में रटने के आधार पर अधिक अँक लाने वाले को तो 'गौरव' के कुछ पल प्राप्त हो जाते हैं पर कम अँक लाने वाले आत्मग्लानि के बोझ तले दबकर नीरस और थकावट भरी अधिगम प्रक्रिया को ठेलते रहते हैं। अपनी गति, अपने तरीकों से अनुभव प्राप्त करने की चाहत भी किसी गहराई में है। अब तो वह समय आ ही गया है जब किसी भी प्रशासनिक सुविधा या असुविधा की दुहाई न दी जाए और बदलाव को सहज स्वीकार किया जाए और यह विश्वास किया जाए कि हर बच्चे में सीखने की संभावनाएँ मौजूद हैं।

भूमिका निर्वाह प्रतिमान के द्वारा समानुभूति का विकास

अर्चना दुबे*
महेंद्र पाटीदार**

भावी शिक्षकों को अपेक्षित शिक्षण प्रक्रिया के लिए तैयार करने हेतु शिक्षण प्रतिमानों की भूमिका पर अनेक शोध किये जा चुके हैं। शिक्षण-प्रतिमानों को मुख्य रूप से सूचना प्रक्रम प्रतिमान, वैक्तिक प्रतिमान, व्यवहारिक प्रतिमान एवं सामाजिक अन्तःक्रिया प्रतिमान नामक श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। सामाजिक अन्तःक्रिया श्रेणि में समूह अन्वेषण, सामाजिक खोज, जूरिस प्रूडेंसियल एवं भूमिका निर्वाह प्रतिमान आते हैं। भूमिका निर्वाह प्रतिमान के प्रयोग द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद मिलती है और उनका उपयोग शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों व विद्यालयों में किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में भूमिका निर्वाह प्रतिमान व शिक्षण प्रक्रिया में उसके उपयोग पर चर्चा की गई है।

आधुनिक समय में वैज्ञानिक अविष्कार, खोजें एवं ज्ञान का उद्भव तेजी से हो रहा है। इस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बदलाव की अत्यधिक आवश्यकता है। विद्यार्थी किसी विषयवस्तु को समझने के बजाय रटने पर अधिक ध्यान दे रहा है और साथ ही साथ कक्षा-कक्ष में भी परंपरागत विधियों का उपयोग शिक्षण कार्य के लिए किया जा रहा है। इस विज्ञान तथा अनुसंधान के युग में परंपरागत विधियों से भी बेहतर कई प्रकार की शिक्षण विधियाँ एवं प्रतिमान हैं, जो कि रटने की बजाय समझने पर बल देते हैं। परन्तु इस प्रकार के नवाचारों का प्रयोग अध्यापक नहीं कर पा रहे हैं।

* विभागाध्यक्ष, शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश

** शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश

आज शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के द्वारा बालकों में रुचि, जिज्ञासा, वैज्ञानिक अभिवृत्तिलोचनात्मक चिंतन, संवेदनशीलता, मानवतावादी दृष्टिकोण, विश्लेषणात्मक योग्यता और स्व-अध्ययन के विकास करने की आवश्यकता है। विश्व में शिक्षा के स्तर में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। इसलिए हमें भी शिक्षा के परंपरागत साधनों का उपयोग कम करके नवाचार की ओर रुझान करना होगा जैसे—शिक्षण प्रतिमान, प्रमाप, स्व-अनुदेशन सामग्री और कंप्यूटर आधारित अनुदेशन आदि। इन्हीं नवाचारों में से एक है, 'शिक्षण प्रतिमान'—'शिक्षण आव्यूह' जिनका प्रमुख कार्य शैक्षिक वातावरण उत्पन्न करना है, जिससे अध्यापक विद्यार्थियों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार जब शिक्षण आव्यूह में शिक्षण प्रतिमान की सहायता से शिक्षण कार्य किया जाता है तो शिक्षण कार्य उत्तम होता है, क्योंकि यह निश्चित पदों पर आधारित होता है।

शिक्षण प्रतिमान की परिभाषा

ज्वायस एवं वेल (1985) के अनुसार—शिक्षण प्रतिमान एक योजना या पद्धति है जो पाठ्यक्रम निर्माण, अनुदेशन सामग्री निर्मित करने एवं कक्षा तथा अन्य वातावरण में अनुदेशन को निर्देशित करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

पासी, सिंह एवं सनसनवाल (1991) के अनुसार—शिक्षण प्रतिमान विस्तृत रूप से वर्णित एक योजना है, जिसमें सिद्धांतों पर आधारित क्रमबद्ध एवं दुहराने योग्य सोपान दिए जाते हैं जिनका प्रयोग करके शिक्षक, अधिगमकर्ता में कुछ निश्चित शिक्षण प्रभावों को उत्पन्न कर सकता है।

शिक्षण प्रतिमानों को विस्तृत रूप से चार श्रेणियों में बाँटा गया है। ये हैं—सूचना प्रक्रम प्रतिमान, वैयक्तिक प्रतिमान, व्यावहारिक प्रतिमान एवं सामाजिक अन्तःक्रिया प्रतिमान।

1. सूचना प्रक्रम प्रतिमान—व्यक्ति विभिन्न स्रोतों से जानकारी प्राप्त करता है। जानकारी को मस्तिष्क में संगठित करने के लिए जो प्रक्रिया होती है उसे सूचना प्रक्रम कहते हैं। कुछ लोग सूचना को जिस प्रकार प्राप्त करते हैं उसी प्रकार अभिव्यक्त भी करते हैं परन्तु कुछ व्यक्ति उस सूचना की अभिव्यक्ति अपनी शैली में करते हैं सूचना प्रक्रम की प्रमाणिकता-अधिगम का ध्यान केंद्रण, जानकारी का क्रम एवं जानकारी को प्रस्तुत करने के माध्यम पर निर्भर करती है। इसमें संकल्पना प्राप्ति, आगमन चिंतन एवं वैज्ञानिक खोज आदि प्रतिमान आते हैं।

2. वैयक्तिक प्रतिमान—वैयक्तिक प्रतिमानों का उद्देश्य व्यक्ति को उनकी क्षमताओं के अनुसार स्वयं का विकास करने में मदद करना है। ये प्रतिमान उन प्रक्रियाओं पर बल देते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति अपनी विशिष्ट वास्तविकताओं का निर्माण एवं संगठन करता है। इस प्रतिमान में व्यक्ति के संवेगात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने वातावरण के साथ उचित संबंध स्थापित करने योग्य बनता है। इसमें चेतना प्रशिक्षण, साइनेटिक्स एवं कक्षीय गोष्ठी आदि प्रतिमान आते हैं।

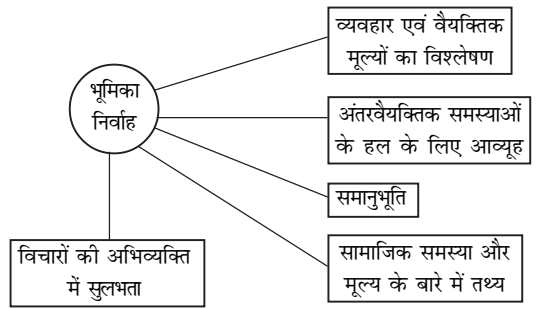
3 व्यावहारिक प्रतिमान—व्यावहारिक प्रतिमान में व्यक्ति को पुनर्बलकों की सहायता से वांछित व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया जाता है जिसका उदाहरण सर्कस में पशु-पक्षियों के रूप

में देखने में आता हैं। इसका मुख्य लक्ष्य अधिगमकर्ता के दृश्य व्यवहारों में परिवर्तन लाना है न कि अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक संरचनाओं एवं व्यवहारों में। इसमें स्व-नियंत्रण, शिथिलता, दबाव न्यूनता एवं स्थापन प्रशिक्षण आदि प्रतिमान आते हैं।

4. सामाजिक अन्तःक्रिया प्रतिमान— मनुष्य एक समाज में रहता है और समाज में रहने के दौरान उसे अन्तःक्रिया करनी पड़ती है। प्रत्येक समाज के कुछ नियम, परंपराएँ, संस्कृति एवं मूल्य होते हैं। व्यक्ति को उस समाज या समुदाय में सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बनाने के लिए उसका विकास उस समाज या समुदाय की संरचना के अनुसार किया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप उसमें सामाजिक कौशलों का विकास हो सके। इसमें समूह अन्वेषण, सामाजिक खोज, जूरिस प्रूडेंसियल खोज एवं भूमिका निर्वाह आदि प्रतिमान आते हैं।

भूमिका निर्वाह प्रतिमान शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करता है क्योंकि इसमें व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से स्वअनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है। साथ ही ज्ञान एवं कौशलों को नजदीक से जानने व व्यावहारिक परिस्थितियों में उपयोग की योग्यता का विकास होता है।

शेफ्टल एवं शेफ्टल ने भूमिका निर्वाह प्रतिमान का विकास किया और इसे शिक्षण प्रतिमान की चार श्रेणियों में से सामाजिक अन्तःक्रिया परिवार के अंतर्गत रखा है। इस प्रतिमान में विद्यार्थी को ऐसी घटनाओं का सामना करना पड़ता है जो उसे दैनिक जीवन में आती है। भूमिका निर्वाह प्रतिमान के द्वारा निम्न शिक्षण एवं पोषक प्रभाव प्राप्त किए जा सकते हैं—



भूमिका निर्वाह प्रतिमान के शिक्षण एवं पोषक प्रभाव

समानुभूति का भूमिका निर्वाह प्रतिमान में विशेष महत्व है, क्योंकि समानुभूति में विद्यार्थी स्वयं को दूसरों की परिस्थिति में रखकर देखता है कि यदि वह घटना मेरे साथ हो तो क्या हो। हेनिज कोहुत के अनुसार समानुभूति स्वयं को दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व में सोचने तथा महसूस करने की योग्यता है।

बर्गर (1987) के अनुसार समानुभूति किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के संदर्भ में उसके अनुभवों को भावनात्मक रूप से जानने की क्षमता है अर्थात् यह दूसरे की भावनाओं को समझने या उसकी परिस्थिति में स्वयं को रखकर देखने की क्षमता है।

लेनपर्ट (2005) के अनुसार समानुभूति वह है जो हमें अपनों से अल्प या दीर्घ समय के लिये दूर होने पर महसूस होती है और यह दूसरों के मन में भी होती है जिनसे हम दूर रहते हैं। हम वास्तविक अवलोकन करते हैं कि यह आँखों से, भावना से व दर्द के रूप में प्रकट होती है।

क्लार्क (1984) एवं कोहन (1991) के शोधों ने कुछ अभिभावक संतान प्रक्रियाओं

एवं समानुभूति, भावनाओं, समझ एवं बच्चों में सामाजिक व्यवहार के विकास के मध्य संबंध को पहचाना है।

आइजेनबर्ग और मुसेन (1978) ने अध्ययन किया कि समानुभूति के समांतर प्रतिरूपण बच्चों की उपस्थिति में बच्चों एवं अन्यो के प्रति देखभाल व्यवहार बच्चों के पूर्व सामाजिक अभि-व्यक्ति एवं व्यवहार के विकास से संबंधित है।

भूमिका निर्वाह प्रतिमान का आधार

भूमिका निर्वाह प्रतिमान सहभागी एवं अवलोकन की वास्तविक समस्या पर आधारित है। भूमिका निर्वाह प्रतिमान की प्रक्रिया मानवीय व्यवहार का एक जीवित न्यादर्श प्रस्तुत करती है, जो कि उनकी भावनाओं को ढूँढने, उनकी अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं प्रत्यक्षीकरण को जानने, उनके समस्या समाधान कौशल एवं अभिवृत्तियों को विकसित करने में एवं विषयवस्तु को विभिन्न दिशाओं में समझने में मदद करता है।

भूमिका निर्वाह प्रतिमान की अवधारणाएँ निम्न हैं

- यह अनुभव पर आधारित अधिगम परिस्थिति को स्पष्ट करता है इसमें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के समान परिस्थितियाँ होती हैं अतः अभिनय सत्य, विशिष्ट संवेदनाओं और व्यवहारों को दर्शाता है। इसमें विद्यार्थी वास्तविक जीवन की समस्याओं से परिचित होता है।
- इसमें विचार एवं संवेदनाएँ सचेतन में लायी जा सकती हैं एवं समूह के द्वारा उत्पन्न की

जा सकती हैं। साथ ही समूह की सामूहिक प्रतिक्रियाएँ विकास एवं परिवर्तन के लिए नये विचार एवं दिशाएँ ला सकती हैं। यह प्रतिमान अध्यापक की भूमिका को कम करता है एवं सुनने एवं अधिगम पर अधिक ध्यान देता है।

- किसी की अभिवृत्ति, मूल्यों एवं विश्वासों जैसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को अवचेतन में लाता है, अगर व्यक्ति अपनी अभिवृत्तियों एवं विश्वासों को जान लेता है तो वह उन पर नियंत्रण कर सकता है। इस तरह का विश्लेषण उन्हें उनकी अभिवृत्तियाँ, मूल्य एवं उनके विश्वासों के परिणाम को मूल्यांकित करने में मदद करता है।

भूमिका निर्वाह प्रतिमान के लक्ष्य

- भूमिका निर्वाह प्रतिमान अभिनय के द्वारा समस्याओं को ढूँढता है, तथा
- समस्याओं पर अभिनय करके उन पर चर्चा करता है।

भूमिका निर्वाह प्रतिमान की पद योजना

शेफ्टल एवं शेफ्टल (1967) के अनुसार भूमिका निर्वाह प्रतिमान में नौ पद होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

पद एक—तैयारी की अवस्था

इस सोपान के अंतर्गत समस्या को पहचान कर उसका स्पष्टीकरण दिया जाता है ताकि परिस्थिति व वातावरण का निर्माण हो सके। इसके साथ ही समस्याओं के मुख्य बिंदुओं को खोजा जाता है। जैसे-फर्जी मतदान की समस्या को शीर्षक के रूप में लेकर बताया जा सकता है कि फर्जी

मतदान कौन करता है? कौन करवाता है? तथा क्या हानियाँ हैं?

पद दो—पात्रों का चयन

इस सोपान के अंतर्गत भूमिका का विश्लेषण करके उसकी विषयवस्तु के आधार पर उपयुक्त विद्यार्थियों का पात्रों के रूप में चयन किया जाता है। जैसे—चुनाव प्रक्रिया में मुख्य चुनाव अधिकारी, सहायक चुनाव अधिकारी, तथा कुछ विद्यार्थियों को फर्जी एवं सही मतदान करने वाले व्यक्तियों के रूप में भूमिका निर्वाह के लिए चयन कर लिया जाएगा।

पद तीन—आवश्यक साज-सज्जा

इस सोपान के अंतर्गत जहाँ भूमिका की क्रिया पूर्ण हो इसके हिसाब से रूपरेखा बनानी चाहिए। जिस तरह की साज-सज्जा तथा भौतिक परिस्थितियों की नाटक को वास्तविकता के निकट लाने की आवश्यकता हो उसी तरह के प्रबंध करने की कोशिश की जानी चाहिए। जैसे—स्थान, मतपत्र, अमिट स्याही, सील, मतपत्र बाक्स, फर्नीचर, कमरे, बस, स्थान और मतदाता सूची, आदि की व्यवस्था करने का कार्य तृतीय सोपान के अंतर्गत किया जाता है।

पद चार—अवलोकन की तैयारी

इस सोपान के अंतर्गत भूमिका निर्वाह प्रतिमान की सफलता के लिए सम्पूर्ण कक्षा के विद्यार्थियों का सहयोग लिया जाता है, क्योंकि कुछ विद्यार्थी तो अभिनय करने के लिए पात्र के रूप में चुन लिए जाते हैं। शेष सभी विद्यार्थियों को अवलोकन का कार्य करना होता है। जैसे—यहाँ कुछ विद्यार्थियों को मतदान की प्रक्रिया को देखने के लिए कहा

जाएगा तथा वे प्रारूप पर भूमिका निर्वाह करने वाले विद्यार्थियों का अवलोकन करेंगे।

पद पाँच—अभिनय करना

इस सोपान का संबंध भूमिका निर्वाह प्रतिमान की वास्तविक प्रस्तुति से है क्योंकि यहाँ सभी पात्र अपनी-अपनी भूमिका के संदर्भ में अभिनय करते हैं तथा भूमिका निर्वाह को बनाये रखते हैं एवं उसको पूर्ण करते हैं। जैसे—विद्यार्थियों की लंबी कतार लगी है जिसमें वे सही व फर्जी मतदान करने वाले व्यक्ति के रूप में एक-एक करके अपनी भूमिका निभाते हैं। फर्जी मतदान करने वाले व्यक्तियों को पीठासीन अधिकारी रोकता है तो फर्जी मतदान करने वाले व्यक्ति अधिकारी से बहस करने लगते हैं तथा अपने को सही साबित करने की कोशिश करते हैं। वे अन्य असामाजिक तत्वों की सहायता से फिर भी फर्जी मतदान करने में कामयाब हो जाते हैं। इस प्रकार वे अपराधी प्रवृत्ति के उम्मीदवार को विजेता बनाने का प्रयास करते हैं। कुछ दिनों बाद परिणाम घोषित होता है तथा जिस प्रत्याशी के लिए फर्जी मतदान किया गया था, वह जीत जाता है। जो प्रत्याशी ईमानदार व बेदाग छवि का होता है, वह हार जाता है। आम जनता को ईमानदार व्यक्ति के प्रति सहानुभूति व समानुभूति होती है।

पद छः—चर्चा और मूल्यांकन

इस सोपान के अंतर्गत शिक्षक तथा सभी विद्यार्थी मिलकर किए गए प्रस्तुतीकरण पर चर्चा करते हैं। साथ ही यह भी देखते हैं कि किस विद्यार्थी ने किस प्रकार की भूमिका निभाई है। इस प्रकार मुख्य बिंदुओं पर चर्चा करके अगला अभिनय

विकसित किया जाता है। जैसे—पीठासीन अधिकारी की भूमिका निभाने वाले विद्यार्थी को कहा जाएगा कि आपके अभिनय में कुछ कमियाँ हैं, उदाहरण के लिए आपको फर्जी मतदाताओं को मतदान करने से रोकना था, पुलिस को बुलाना था, आदि।

पद सात—पुनः अभिनय करना

इस सोपान के अंतर्गत संशोधित भूमिका का पुनः अभिनय किया जाता है क्योंकि पिछले सोपान में चर्चा और मूल्यांकन द्वारा जो-जो बिंदु उभर कर सामने आए उनको विशेषकर सामने रखा जाता है तथा पुनः उन्हीं विद्यार्थियों को अभिनय का अवसर दिया जाता है। जैसे—पीठासीन अधिकारी तथा सभी अन्य भूमिका निभाने वाले पुनः अभिनय करेंगे तथा पीठासीन अधिकारी की भूमिका निभाने वाले को विशेष रूप से सुधार के साथ अपना अभिनय करना है।

पद आठ—पुनः चर्चा और मूल्यांकन

इस सोपान के अंतर्गत पुनः अभिनय के संदर्भ में चर्चा करते हैं तथा यह देखते हैं कि जिस उद्देश्य के लिए भूमिका निर्वाह की गयी थी उसमें सहभागी सफल हुए या नहीं तथा पुनः जब विद्यार्थियों ने भूमिका निभायी तो वह पहले की तुलना में कितनी प्रभावी थी इस तथ्य का भी मूल्यांकन किया जाता है। जैसे—अब यहाँ इस बात पर बल दिया जाएगा कि विद्यार्थियों ने इस चुनाव प्रक्रिया में किस प्रकार का अनुभव प्राप्त किया। समानुभूति के परिप्रेक्ष्य में सभी विद्यार्थियों से यह पूछा जाएगा कि आप यदि उस हारने वाले उम्मीदवार की जगह होते तो आप किस प्रकार

का अनुभव करते। इसके पश्चात सभी विद्यार्थी इस भूमिका पर प्रतिवेदन लिखेंगे।

पद नौ—अनुभव बाँटना एवं सामान्यीकरण

इस सोपान के अंतर्गत समस्यात्मक परिस्थिति को वास्तविक अनुभवों एवं वर्तमान समस्याओं से जोड़ा जाता है तथा व्यवहार के सामान्य सिद्धांतों को खोजा जाता है। सामान्यीकरण के पश्चात उनका भविष्य में उपयोग करने की सलाह दी जाती है। जैसे—आज की वर्तमान परिस्थिति में इस विषय को रखा जाएगा तथा विद्यार्थियों को समझने का मौका मिलेगा कि फर्जी मतदान जैसी प्रक्रिया को इस लोकतांत्रिक देश से कैसे हटाया जा सकता है। वे आपस में चर्चा करेंगे कि इसके क्या दुःस्परिणाम होते हैं तथा कैसे बेईमान व भ्रष्ट व्यक्ति राजनीति में आ जाते हैं तथा ऐसे भ्रष्ट लोगों को राजनीति में आने से कैसे रोका जाए।

उपर्युक्त उदाहरण की सहायता से यह अनुभव किया जा सकता है कि इस प्रकार के समस्याजनक दृष्टांत हमारे जीवन में भी आ सकते हैं तथा उस परिस्थिति में हम किस प्रकार का अनुभव करेंगे तथा समस्या का समाधान किस प्रकार करेंगे।

शिक्षण प्रक्रिया में भूमिका निर्वाह प्रतिमान के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणाम

- (क) विद्यार्थियों को परिस्थिति को निकट से जानने का मौका मिलता है।
- (ख) विद्यार्थी व्यक्तिगत अनुभव द्वारा घटना की गहनता को समझ सकते हैं।
- (ग) विद्यार्थियों में रुचि व उत्साह का विकास किया जा सकता है।

- (घ) विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन के यथार्थ का अनुभव होता है।
- (ङ) विद्यार्थियों में संचार कौशल व अभिव्यक्ति की कला का विकास होता है।
- (च) विद्यार्थियों में समूह में कार्य करने की भावना का विकास होता है।
- (छ) विद्यार्थियों में समस्या समाधान की योग्यता का विकास होता है।

लेकिन इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुदेशनात्मक प्रभाव है भूमिका निर्वाह प्रतिमान द्वारा विद्यार्थियों में समानुभूति का विकास होना। जब कोई विद्यार्थी दूसरे की समस्याओं का अवलोकन करते हैं या देखते हैं और उन समस्याओं पर भूमिका निर्वाह प्रतिमान की सहायता से किसी प्रकरण पर अभिनय करते हैं तब उनमें दूसरे की समस्याओं को समझने की सजगता व क्षमताओं का विकास होता है। इस के साथ ही विद्यार्थियों की उपलब्धि भी बढ़ती है, जिससे उनकी चिंता व तनाव भी

कम होता है। इस प्रतिमान का कक्षा-कक्ष में उपयोग किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति जिनमें दूसरों के दुःखों व समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता हो, जो दूसरों की समस्याओं को स्वयं अनुभव करें वे उसका समाधान भूमिका निर्वाह द्वारा कर सकते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भूमिका निर्वाह प्रतिमान का प्रयोग शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों व अन्य विद्यालयों व महाविद्यालयों में भी किया जा सकता है। इसमें विद्यार्थियों को समस्या के अनुसार अध्यापक, विद्यार्थी, अवलोकनकर्ता, प्राचार्य एवं समीक्षक इत्यादि की भूमिकाएँ निभाने के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार के अनुभवों द्वारा उनमें आवश्यक कौशल तथा व्यवहार का विकास समुचित ढंग से किया जा सकता है। उचित विषयवस्तु का चुनाव कर, यदि उस पर विद्यार्थियों द्वारा बार-बार भूमिका निर्वाह करवाया जाए, तब उनमें समानुभूति का विकास होने की संभावना अधिक होती है।

संदर्भ

- अग्रवाल, जे. सी. 2007. *शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबंध*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- चौहान, एस. एस. 1979. *इनोवेशन इन टीचिंग लर्निंग प्रोसेस*, विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली
- जोएस. बी. और एम. वेल. 1985, *मॉडल ऑफ टीचिंग*, सैकेंड एडिशन, प्रिंटस हॉल, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
- पाण्डेय, के. एवं एस. श्रीवास्तव. 2007. *शिक्षा मनोविज्ञान*, टाटा मेग्राहिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली
- बर्जर, डी. एम. 1987. *क्लिनिकल एम्पैथी*, जेनसन, एरोसन, इंक, नार्थ वाले

‘शिक्षा का विकेंद्रीकरण’

पंचायतीराज व्यवस्था में शिक्षा का मॉडल

तिलक राज पंकज*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा के विकेंद्रीकरण और लोक सहभागिता पर जोर दिया। विकेंद्रीकरण की पंचायतीराज व्यवस्था के अंतर्गत ग्रामीण स्तर पर शिक्षा की जिम्मेदारी ग्राम पंचायत को सौंपी जाती है। शिक्षा का अधिकार कानून 2009 में भी ग्राम पंचायत से यह अपेक्षा की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रसार के लिए ग्राम पंचायत शिक्षा समिति गठित की जाती है। ग्राम पंचायत शिक्षा समिति की संरचना क्या होती है? इसके मुख्य कार्य कौनसे हैं? इसके अधिकार क्या हैं आदि बिंदुओं पर इस लेख में चर्चा की गई है। साथ ही ज़मीनी स्तर पर शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए राज्य स्तरीय शिक्षा समिति का एक मॉडल भी प्रस्तावित किया गया है जिसका केंद्र बिंदु ग्राम पंचायत को माना गया है। लेख में प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए ग्राम पंचायत समिति के प्रस्तावित कार्यों का ब्यौरा भी दिया गया है।

देश की आजादी के बाद से शिक्षा केंद्र के साथ-साथ राज्यों की सूची का विषय रहा है। राज्य सरकारें बच्चों को शिक्षा देने का कार्य केंद्र सरकार, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों व गैर-सरकार संगठनों की मदद से कर रहीं हैं। गत 60 वर्षों में शिक्षा में सुधार की दिशा में अनेकों क्रान्तिकरी कदम उठाए गए। इन प्रयासों से शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में केंद्र सरकार द्वारा प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए एक सकारात्मक सोच बनाई। इसके पश्चात् शिक्षा में बदलाव करने का मुद्दा लेकर अनेकों सरकारी व गैर-सरकारी परियोजनाएँ, कार्यक्रम क्रियान्वित किए गए। वर्तमान में भी राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, सर्वशिक्षा अभियान, गुरु मित्र योजना, राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम, कस्तूरबा गाँधी

*अति. ब्लॉक प्राइमरी शिक्षा अधिकारी, तिजारा, अलवर, राजस्थान

बालिका आवासीय विद्यालय, विशेष लक्षित समूहों के बच्चों के अलावा कई कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों से शिक्षा के प्रचार-प्रसार में यकीकन फायदा हुआ है। नए स्कूलों का खुलना, क्रमोन्नत होना, स्कूलों का भौतिक विकास होना, शिक्षकों की नियुक्तियाँ, शिक्षक प्रशिक्षण, कम्प्यूटर शिक्षा, वैकल्पिक शिक्षा, निःशक्त बच्चों की शिक्षा इत्यादि के साथ ही जन जागरण भी हुआ है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा के क्षेत्र में एक नया आयाम जुड़ा कि 'लोक सहभागिता' के बिना हम शिक्षा के लक्ष्यों को नहीं पा सकते। फिर सिलसिला शुरु हुआ ग्राम स्तरीय शिक्षा समितियों के गठन का, उन्हें स्कूल की जिम्मेदारी सौंपने का, उनके सहयोग से प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्यों को पाने का, जिसके सकारात्मक परिणाम सबके सामने हैं।

केंद्र सरकार द्वारा संचालित परियोजनाओं में 'लोक सहभागिता' पाने के लिए पहले शाला प्रबंधक समिति/ग्राम शिक्षा समिति, फिर शाला विकास एवं प्रबंधन समिति का गठन किया गया। 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम 2009 के अंतर्गत अब पुनः 'शाला प्रबंधन समिति' का गठन कराया जा रहा है। इन ग्राम स्तरीय शिक्षा प्रबंधन समितियों ने कई जगह बहुत अच्छा कार्य किया, लेकिन उससे भी बड़ा सच यह भी है कि अधिकांश समितियाँ निष्क्रिय हैं। इन प्रबंधन समितियाँ के अलावा स्कूलों में शिक्षक अभिभावक संघ, मातृ-शिक्षक संघ, पोषाहार समिति, बालिका मंच, सखी-सहेली समूह आदि भी होते हैं लेकिन ये भी सक्रिय नहीं बन पाते। इनकी निष्क्रियता की सबसे बड़ी व अहम वजह यह है कि सरकारी

स्कूलों में पढ़ने वाले ज्यादातर बच्चे आर्थिक रूप से कमजोर व वंचित समूहों के परिवारों के होते हैं जिनकी प्राथमिकता शिक्षा नहीं होती।

ऐसे में 'लोक सहभागिता' के मुद्दे पर सवालिया निशान लग जाता है। इन समितियों को कैसे सक्रिय किया जाए? किस प्रकार स्थानीय समुदाय की प्राथमिकता में शिक्षा को लाया जाए? आखिरकार कब तक हम निरक्षरता के अंधेरों से जूझते रहेंगे? किस प्रकार स्थानीय समितियाँ पंचायती राज व्यवस्थाओं के सपनों को साकार कर पाएंगी? इन्हीं सब सवालों के जवाब में 'शिक्षा का विकेंद्रीकरण' के अंतर्गत 'ग्राम पंचायत शिक्षा समिति' पंचायती राज व्यवस्था में शिक्षा के मॉडल की परिकल्पना की गई है।

ग्राम पंचायत शिक्षा समिति—प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण के लक्ष्यों को 'लोक सहभागिता' से प्राप्त करने, शिक्षा की विकेंद्रीकृत व्यवस्था बनाने, स्थानीय जन सरकार को अपने बच्चों की शिक्षा का जिम्मा सौंपने तथा शिक्षा में सुधारात्मक एवं विकासात्मक प्रयासों में यह समिति मील का पत्थर साबित हो सकती है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं एवं पंचायती राज में शिक्षा का अधिकार कानून लागू करने का जिम्मा इस समिति को दिया जाना सर्वथा उचित होगा।

शिक्षकों को बच्चों को शिक्षा देने के साथ ही कई प्रकार के गैर-शैक्षिक कार्य करने होते हैं और यह कार्य तब तक करने होंगे जब तक देश विकासशील देशों की श्रेणी से निकल कर विकसित देशों की श्रेणी में नहीं आ जाता। सरपंच ग्राम पंचायत का मुखिया होता है, साथ ही वह एक लोक सेवक, सामुदायिक मुखिया व पंचायती राज

व्यवस्था का प्रतिनिधि भी होता है। इसकी भूमिका जन्म, मृत्यु व विवाह पंजीकरण, राशनकार्ड बी.पी.एल. कार्ड, वोटर कार्ड, क्रेडिट कार्ड इत्यादि में होती है। शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं का भी वह प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से मुखिया होता है।

इस शिक्षा समिति के अनेकों फायदे हैं। प्रत्येक बच्चे का जन्म पंजीकरण, विवाह पंजीकरण जरूरी करने पर बार-बार सर्वे करने से बचा जा सकता है। बाल विवाह पर रोक लग सकती है। शिक्षा से वंचित विशेष लक्षित समूहों, पलायन करने वाले परिवारों, व अन्य कारणों से पिछड़े परिवारों के बच्चों को जोड़ने का जिम्मा इस समिति को दिया जा सकता है। यह समीति सीधे ही अभिभावकों पर मनोवैज्ञानिक दबाव बना सकती है। बच्चों के शिक्षा से वंचितता की गुंजाइश न्यून हो सकती है।

इस समिति को वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकार देकर सशक्त बनाया जा सकता है ताकि यह स्थानीय चुनौतियों का बखूबी सामना कर सके। शिक्षा (पूर्व प्राथमिक, प्रांरभिक, माध्यमिक) से जुड़े मुद्दे इस समिति को सौंपे जाने चाहिए/सौंपे जा सकते हैं। देश का द्रुतगति से विकास करने, शिक्षा का विकेंद्रीकरण करने की दिशा में कदम बढ़ाने, स्कूलों को समाज का अभिन्न अंग बना रहने देने, गुणात्मक शिक्षा की पहल करने, शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू करने, पंचायती राज के सपनों को साकार करने में यह समिति बदलाव लाने का प्रवाह बना सकती है।

ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के सदस्य

- (1) **सरपंच**—अध्यक्ष
- (2) **उप सरपंच**—उपाध्यक्ष

- (3) **पदेन सचिव**—ग्राम पंचायत के क्षेत्र में स्थित उच्चतर विद्यालय (उ.मा.वि./मा.वि./ उ.प्रा.वि. का संस्था प्रधान
- (4) **सदस्य**—ग्राम पंचायत में स्थित समस्त उ.मा./मा./उ.प्रा./प्रा.विद्यालयों के प्रधान
- (5) **सदस्य**—ग्राम पंचायत की समस्त आंगनवाड़ी केंद्रों की प्रभारी
- (6) **सदस्य**—ग्राम सचिव
- (7) **सदस्य**—ग्राम पंचायत क्षेत्र के समस्त विद्यालयों की समितियों के अध्यक्ष
- (8) **सदस्य**—समस्त स्वास्थ्य कर्ता साधिन, आशा सहयोगिनी आदि
- (9) **सदस्य**—एक तिहाई वार्ड पंच
- (10) **सदस्य**—दो शिक्षाविद्।
- (11) **सदस्य**—समुदाय के मुखिया-2 (एक महिला)
- (12) **सदस्य**—भामाशाह /शाला मित्र-2
- (13) **सदस्य**—एम.टी.ए./पी.टी.ए. के 1/3 प्रधान/अध्यक्ष

विशेष आमंत्रित—ग्राम पंचायत क्षेत्र के निवासी पंचायत समिति/जिला परिषद् सदस्य, क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठन (शिक्षा) के प्रतिनिधि, शिक्षक संघ के प्रतिनिधि, पटवारी, मान्यताप्राप्त स्कूलों के प्रतिनिधि।

ग्राम पंचायत शिक्षा समिति की बैठक तीन माह में एक बार अवश्य होनी चाहिए। विशेष आमंत्रित सदस्य निर्णयों में भागीदारी ना निभाएँ। समिति में 1/3 महिलाएँ हों। समिति के सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष का हो इत्यादि नियम बनाए जा सकते हैं।

समस्त समितियों का पंजीकरण अनिवार्य हो।

ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के कार्य—
इस समिति को निम्न संभावित कार्य सौंपे जा सकते हैं।

1. जन्म, मृत्यु व विवाह पंजीकरण—

- ग्राम सचिव/सेवक, आँगनवाड़ी कार्यकर्ता, ए.एन.एम., आशा सहयोगिनी, साधिन इत्यादि की मदद से यह पंजीकरण अनिवार्य किया जाए।
- पंजीकरण प्रमाण-पत्र के आधार पर ही सरकारें अन्य सुविधाएँ जारी करें। जैसे—राशन कार्ड में नाम जोड़ना/हटाना, बीपीएल कार्ड, किसान क्रेडिट कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, बैंक खाता, जमीनों/मकानों की रजिस्ट्री, बिजली पानी, फोन, इंटरनेट के कनेक्शन या अन्य कोई सरकारी सुविधा।
- (0-5), (6-14) व (15-35) आयु वर्ग का वर्गीकरण कर संबंधित विभाग को इसी अनुसार योजना तैयार कराना।

2. आयुवार बच्चों को शिक्षा से जोड़ना—
समिति द्वारा चिह्नित (पंजीकृत) बच्चों का नामांकन व ठहराव सुनिश्चित करना।

- स्कूलों में अथवा वैकल्पिक शिक्षा शिक्षा केंद्रों में दाखिला नहीं दिलाने वाले अभिभावकों के खिलाफ कार्यवाही कराना।
- बाल मजदूरी, बाल विवाह, ड्राप आउट, पलायन को रोकना व ऐसे बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करना।
- विशेष लक्षित समूहों, यथा बालिकाओं, सफाई कार्मिकों के बच्चों, नट-कंजर बस्तियों के बच्चों, ईट भट्टों पर कार्य करने वाले परिवारों

के बच्चों, कठिन वर्गों के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कराना।

3. गुणात्मक शिक्षा के लिए प्रयास करना—

- प्रत्येक बच्चा अच्छी व गुणवत्ता आधारित शिक्षा पाने का हकदार है। इसके लिए समिति प्रयास करेगी।
- प्रत्येक बच्चा प्रत्येक वर्ष कक्षांनोति करे यह सुनिश्चित करना।
- पाठ्यक्रम के अनुसार बच्चों की समझ बनें।
- सी.सी.ई. की प्रणाली पर बच्चों का मूल्यांकन हो।
- प्रत्येक विद्यालय निर्धारित मानदण्डानुसार न्यूनतम 240 दिन खुलना चाहिए।
- शिक्षकों व बच्चों की विद्यालयों में सतत उपस्थिति सुनिश्चित करना।
- प्रत्येक शिक्षक की न्यूनतम कक्षा शिक्षण की 180 दिवसों की न्यूनतम अवधि को सुनिश्चित कराना।
- कक्षा शिक्षण के साथ-साथ बच्चों की प्रतिभा को निखारने के लिए सह-पाठ्यतर गतिविधियों, खेल उत्सव, पर्व, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन कराना।

4. शिक्षकों की व्यवस्था करना—आर.टी.ई.

2009 के अनुसार छात्र, शिक्षक अनुपात में शिक्षकों की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी समिति की हो।

- ग्राम पंचायत के समस्त विद्यालयों में निर्धारित मानदण्डानुसार शिक्षकों का पदस्थापन कराना।
- निर्धारित मानदण्डानुसार शिक्षक उपलब्ध न होने पर स्थानीय स्तर पर 'सरकारी व्यवस्था होने तक' वैकल्पिक शिक्षक लगाना।

- अंतर ग्राम पंचायत शिक्षकों को व्यवस्थार्थ एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में लगाना।
- शिक्षकों का अवकाश, न्यूनतम 180 दिन कक्षा शिक्षण की सुनिश्चितता, कार्यग्रहण/ कार्यमुक्ति अनुशासन आदि का जिम्मा समिति का हो।

5. स्कूलों को मान्यता—सरकारी स्कूलों की साख को बनाए रखने, गुणात्मक शिक्षा व्यवस्था बनाए रखने व एक समान शिक्षा व्यवस्था बनाए रखने के लिए समिति यह फैसला करे कि उनके बच्चे किस प्रकार के स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करेंगे। आर.टी.ई. के प्रावधानानुसार प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क व मुक्त शिक्षा सुविधा देना अनिवार्य है। ऐसे में समिति ही अपने क्षेत्र के प्राइवेट स्कूलों की मान्यता का फैसला करे। ये स्कूल आर.टी.ई. के प्रावधानों को पूरा कर रहे हैं या नहीं। सरकारी नियमों से चल रहे हैं या नहीं, यह निर्णय समिति करे।

6. वैकल्पिक व्यवस्थाएँ करना—तमाम कोशिशों के बावजूद भी जो बच्चे औपचारिक शिक्षा व्यवस्थाओं से नहीं जुड़ पाते, उनके लिए समिति वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्थाएँ सुनिश्चित करे।

- कठिन व पिछड़ी ग्राम पंचायतों के बच्चों, ग्राम पंचायतों के हार्ड कोर बच्चों की शिक्षा व्यवस्थाएँ करना।

7. गैर-सरकारी संगठनों से समन्वयन—क्षेत्र में कार्य कर रही एन.जी.ओ. से शिक्षा के लिए सहयोग प्राप्त करना, सहयोग कर समन्वयन स्थापित करना।

8. वित्तीय प्रबंधन—राज्य सरकार, भारत सरकार व अन्य विभागों द्वारा शिक्षा के लिए दिए जा रहे फंड्स इस समिति को हस्तांतरित किए जाएँ।

जिससे समिति सुविधाओं में सुधार कर सकती है। इसके अतिरिक्त समिति स्थानीय वित्त भी जुटाने का कार्य कर सकती है जैसे—

- भामाशाहों/शाला मित्रों से चंदा एकत्र करना।
- स्थानीय कर लगाना।
- स्थानीय समुदाय से समझ बनाकर राशि एकत्र करना।
- स्कूलों के औद्योगिक समूहों को गोद देना।
- स्थानीय सरकारी भवनों को स्थानीय समुदाय को किराए पर देना इत्यादि।

अन्य कार्य—

- पोषाहार की व्यवस्था कराना।
- विद्यालयों का भौतिक विकास कराना।
- बच्चों का भौतिक विकास कराना।
- बच्चों को अन्य सुविधाएँ जैसे—शाला पौशाक, छात्रवृत्तियाँ, टी.एल.एम. इत्यादि प्रदान कराना।
- राष्ट्रीय अभियानों में सहयोग करना।
- विद्यालयों की साफ-सफाई, साज-सज्जा, वृक्षारोपण, पीने का पानी, शौचालय आदि की सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

इसी प्रकार यह समिति ग्रामीण क्षेत्रों से जुड़े अनेक विकास कार्यों में सहयोग कर सकती है।

ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के अधिकार

इस समिति का पंजीकरण करके सरकार द्वारा इसे कुछ मूलभूत अधिकार दिए जाने आवश्यक हैं जिनसे आमजन इस समिति व शिक्षा के महत्व को समझे—

- शिक्षा समिति द्वारा जारी जन्म, मृत्यु व विवाह प्रमाण-पत्र ही अन्य सरकारी सुविधाओं के लिए मान्य किया जाए।

- स्कूलों में बच्चों को दाखिला नहीं कराने वाले/ठहराव सुनिश्चित करने में बाधक अभिभावकों की सुविधाएँ निरस्त करने के अधिकार देना।
- वैकल्पिक शिक्षा सुविधाएँ/व्यवस्थाएँ कराने का अधिकार देना।
- स्थानीय वित्त सुविधाएँ जुटाने का अधिकार देना।
- प्राइवेट स्कूलों को कक्षा 8 तक की मान्यता देने का अधिकार देना।
- आर.टी.ई. के प्रावधानानुसार शिक्षक नहीं होने पर शिक्षकों का स्थानान्तरण/प्रतिनियुक्ति से पूर्व समिति को शिक्षक को कार्यमुक्त नहीं करने का अधिकार देना।
- न्यूनतम 240 दिन स्कूल वर्ष भर में खोलने का अधिकार देना।
- प्रत्येक शिक्षक से न्यूनतम प्रति शैक्षिक सत्र में 180 दिवस तक कक्षा शिक्षण कराने का अधिकार देना।
- किसी भी वित्तीय संस्थान, गैर-सरकारी संगठन, औद्योगिक समूह से सीधे ही फंड्स पा सकने के अधिकार देना, आदि।

पंचायती राज व्यवस्था का शिक्षा मॉडल

(राज्य स्तरीय शिक्षा समिति) प्रस्तावित

अध्यक्ष	पंचायतीराज विभाग मंत्री
उपाध्यक्ष	शिक्षा मंत्री। (प्रारंभिक, माध्यमिक)
सचिव पदेन	प्रमुख शासन सचिव, शिक्षा (प्रारंभिक, माध्यमिक)
सदस्य	पंचायतीराज विभाग राज्य मंत्री शिक्षा विभाग, राज्य मंत्री संस्कृत शिक्षा मंत्री। महिला एवं बाल विकास विभाग, मंत्री।
सदस्य	सचिव (1) पं.रा. विभाग (2) प्रार. एवं माध्य. शिक्षा विभाग (3) संस्कृत शिक्षा विभाग (4) महिला एवं बाल विकास विभाग

सदस्य	निदेशक (1) प्रारंभिक, माध्यमिक व संस्कृत शिक्षा (2) साक्षरता एवं सतत् शिक्षा (3) सर्व शिक्षा अभियान (4) राष्ट्रीय मा. शि. अभियान (5) सीमेट(6) महिला एवं बाल विकास (7) स्टेट ओपन स्कूल (8) राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (9) राज्य मदरसा बोर्ड (10) राज्य मा.शि. बोर्ड (11) यूनीसेफ (स्टेट) (12) स्टेट टेक्सट बुक्स बोर्ड, राज्य स्तरीय संचालित शैक्षिक परियोजनाएँ
सदस्य	(1) शिक्षाविद् -2 (2) शिक्षक संघ प्रतिनिधि-2(3) गैर-सरकारी संगठन -2 (4) भामाशाह-2
सदस्य	(1) जिला प्रमुख-2 (2) प्रधान-2 (3) सरपंच-2
सदस्य	(1) संभागीय आयुक्त -1 (2) जिला कलक्टर-2(3) मुख्य कार्यकारी अधिकारी-2 (4) विकास अधिकारी-2 (5) उपखण्ड अधिकारी-2
सदस्य	(1) उपनिदेशक-1 (2) प्राचार्य, डाइट-2 (3) जिला शिक्षा अधिकारी-2 (4) क्षेत्रीय उप निदेशक आई सी डी एस-2 (5) बीईईओ-2 (6) सीडीपीओ-2।

अलग-अलग राज्यों में यह सँख्या भिन्न हो सकती है। राज्य में प्रत्येक जिले/संभाग को प्रतिनिधित्व मिले, इस तरह सदस्य बनाए जा सकते हैं।

राज्य सरकार इस समिति की बैठक वर्ष में कम से कम 3 बार करा सकती है, जिसमें माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा से जुड़े समस्त मुद्दों पर चर्चा की जा सकती है। बैठक दो दिवस की हो, ताकि कोई मुद्दा छूटे नहीं व रात्रि सत्रों में शैक्षिक नवाचारों, हार्ड कोर विषयों पर 'परिचर्चा' 'कार्यशाला' या शैक्षिक फिल्मों का प्रदर्शन किया जा सकता है।

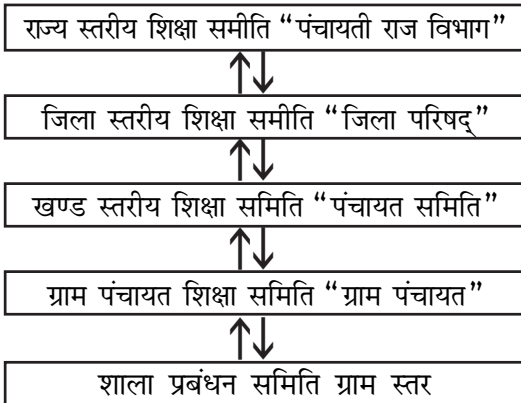
राज्य स्तरीय समिति ऐसे बिंदुओं को ज्यादा प्रकाश में लाए, जिसका विस्तृत प्रभाव पड़ता हो, व्यक्तिगत/विशेष प्रकरणों को नहीं। जैसे—

- (1) शिक्षा का कानून/अधिकार, अधिनियम लागू करना।
- (2) शिक्षकों की तबादला नीतियों का निर्धारण करना।
- (3) नियुक्तियाँ, पदस्थापन, प्रशिक्षण।

- (4) सबके लिए एक समान पाठ्यक्रम लागू कराना।
- (5) सब बच्चों के लिए शिक्षा के समान अवसर या सुविधाओं की उपलब्धता कराना।
- (6) गुणात्मक शिक्षा के लिए बेहतर इंतजामात।
- (7) मानीटरिंग एवं सुपरविजन की बेहतर व्यवस्थाएँ।
- (8) शिक्षा में राजनैतिक दखल अंदाजी कम करना।
- (9) वित्त संबंधी प्रकरण।
- (10) शैक्षिक अभियानों का क्रियान्वयन।
- (11) सूचना संप्रेषण को मजबूत करना।
- (12) शैक्षिक प्रबंधन को मजबूत बनाना।
- (13) शैक्षिक नवाचारों का क्रियान्वयन।

अन्य राज्य स्तरीय नीति निर्धारक मुद्दे हो सकते हैं।

सूचना संप्रेषण व अधिकारों का हस्तान्तरण



ग्राम पंचायत शिक्षा समिति में प्रारंभिक व माध्यमिक शिक्षा का समावेशीकरण

- प्रत्येक ग्राम पंचायत शिक्षा समिति का सचिव उस ग्राम पंचायत में स्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का संस्था प्रधान होगा।

- यह विद्यालय ही ग्राम पंचायत का नोडल विद्यालय होगा और संस्था प्रधान ग्राम पंचायत शिक्षा अधिकारी होगा।
- यह संस्था प्रधान ही ग्राम पंचायत क्षेत्र के समस्त विद्यालयों का प्रशासनिक प्रबंधन करेगा। संबंधित विद्यालयों का सर्विस रिकार्ड, अवकाश प्रकरण, तनख्वाह का हिसाब, निर्णयों की अनुपालना व अनुशासन संबंधी प्रकरण की जिम्मेदारी संभाले।
- यह संस्था प्रधान ही ब्लॉक, जिला एवं उच्च स्तर समन्वयन का कार्य करेगा।
- ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के निर्णयों व उच्च स्तर के निर्णयों की अनुपालना कराना, विभिन्न प्रस्तावों को प्रेषित करना, अधीनस्थ विद्यालयों का निरीक्षण भी यह संस्था प्रधान ही करेंगे।

इससे ब्लॉक स्तर से अनावश्यक बोझ कम होगा। सूचना संप्रेषण व शैक्षिक प्रबंधन को मजबूती मिलेगी। ग्राम पंचायतें निर्णय लेने में सशक्त बनेंगी व कार्यों में अनावश्यक देरी नहीं होगी। ब्लॉक स्तर पर मॉनीटरिंग व सुपरविजन की व्यवस्था बेहतर होगी। शिक्षकों को अनावश्यक रूप से ब्लॉक पर चक्कर नहीं काटने होंगे। समय व वित्त की बचत होगी।

- इसी प्रकार की व्यवस्था से ब्लॉक एवं जिला स्तर के अधिकारी अधिकाधिक मानीटरिंग एवं सुपरविजन कर पाएँगे, गुणात्मक शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा।
- शिक्षकों का संस्थापन, वेतन, अवकाश प्रकरण, अनुशासन प्रकरण, सूचनाएँ इत्यादि ग्राम पंचायत के उच्चतम विद्यालयों में हस्तांतरित

- हो जाने से ब्लॉक अधिकारियों पर से अनावश्यक बोझ कम हो जाएगा।
- ब्लॉक एवं जिला स्तर पर उन्हीं प्रकरणों को प्रेषित किया जाए जो ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के अधिकार क्षेत्र के बाहर के हों। बिना वजह उठने वाले प्रकरणों पर रोक लगेगी तथा प्रशासन का समय, श्रम व वित्त की बचत होगी।
 - शिक्षकों की ब्लॉक व जिला स्तर पर बार-बार आवाजाही पर भी अंकुश लगेगा। क्योंकि प्रत्येक कार्य ग्राम पंचायत स्तर पर ही संपादित होगा।
 - ग्राम पंचायत सचिव प्रधानाध्यापक व समिति के सदस्य समय-समय पर तय कार्यक्रमानुसार विद्यालयों में अवलोकन करेंगे, विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेंगे, सहयोग करेंगे, समस्याओं के निवारण में मदद करेंगे।
 - प्रत्येक ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के पदेन सचिव के विद्यालय में कंप्यूटर, फोन, इंटरनेट आदि की सुविधाएँ आवश्यक रूप से हों ताकि सूचनाएँ त्वरित गति से संप्रेषित की जा सकें।
 - ग्राम पंचायत शिक्षा समिति के सदस्य प्रत्येक माह में एक बार प्रत्येक गाँव/ढाणी में जाएँ, शिक्षा के मुद्दों पर चर्चा करें, रात को स्कूल में बैठकें करें ताकि आ रही समस्याओं को सुलझाया जा सके या शिक्षण कार्यों को और अधिक प्रभावी बनाया जा सके या ठहराव, ड्राप ऑउट जैसे मुद्दों पर चर्चा हो सके।
 - प्रत्येक गाँव में प्रत्येक बच्चे के ठहराव व शैक्षिक प्रगति का ब्यौरा रखा जाएगा, अभिभावकों के साथ चर्चा की जाएगी।
 - ग्राम शिक्षा समिति अपने विद्यालयों के शिक्षकों के तालमेल बनाएँ और इस प्रकार की व्यवस्थाएँ बनाएँ कि शिक्षक पाक्षिक रूप से गाँवों में रात्रि विश्राम करें। रात्रि विश्राम वाले कार्यक्रम में ब्लॉक/जिला स्तर से कोई प्रतिनिधि भी उपस्थित होना चाहिए।
 - इसी दिवस/रात्रि को वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्थाओं का भी अवलोकन किया जा सकता है।
इसके अलावा भी कई सारे ऐसे शैक्षिक मुद्दे हो सकते हैं, जिन पर ग्राम पंचायत शिक्षा समिति नियंत्रण कर सकती है जैसे—
 - शिक्षकों का स्कूलों में ठहराव बनाना।
 - कक्षा शिक्षण में शिक्षकों को अधिकाधिक समय रहना।
 - शिक्षकों को गैर-शैक्षिक कार्यों में लगे रहने से बचाना।
 - बिना वजह, बिना कार्य शिक्षकों की आवाजाही को रोकना।
 - सूचना संप्रेषण की व्यवस्थाएँ सही करना व नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना।
 - अनावश्यक प्रतिनियुक्तियाँ, स्थानानांतरण पर रोक लगाना।
 - स्कूल बंद होने की परिस्थितियों पर रोक लगाना इत्यादि।
- उपसंहार**—अब जबकि 01 अप्रैल 2010 से 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम लागू हो गया है। अभिभावकों को शिक्षा समितियों से जोड़ा गया है। पंचायती राज को शिक्षा की बागडोर सौंपी जा रही

है। देश और दुनिया में प्रत्येक दिन नए आयाम स्थापित हो रहे हैं। ऐसे में द्रुत गति से आगे बढ़ने व वक्त के साथ चलने के लिए हमें नए सिरे से सोचना होगा।

ग्राम पंचायत को केंद्र बिंदु मानकर हमें विकास का नया मॉडल बनाना होगा। शिक्षा के बिना सब अधूरा है। आज हमारी बदकिस्मती यह है कि आजादी के 63 सालों के बाद भी हम तालीम की बुनियादी सहूलियतों से बहुत दूर हैं। तमाम कोशिशों और अभियानों के बाद भी मंजिलें आसान नहीं हो पा रही हैं।

फासले और फर्क बढ़ते जा रहे हैं, अमीर व गरीब की तालीम में, पाठ्यक्रम में, सहूलियतों में, शहर और गाँवों में। शिक्षा का व्यापारीकरण हो रहा है। इस कम्प्यूटर युग में एक विद्यार्थी को दुनिया की हर चीज मुहैया है तो दूसरा एक पेड़ के नीचे बैठकर भविष्य के अंधकार में अपनी राह खोज रहा है। हमें भाषावाद, क्षेत्रवाद, संरक्षणवाद, भाई-भतीजावाद, सम्प्रदायवाद इत्यादि, वाद् रूपी जहरों को तालीम से मिटाना होगा और इन फासलों को कम करना होगा, ताकि देश के प्रत्येक बच्चे का भविष्य उज्ज्वल हो सके।

प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण

लक्ष्मी नारायण मित्तल*

भाषा के बिना मानवीय व्यवहार और चिंतन सम्भव नहीं है। यह बात तय है। हर भाषा का अपना विशिष्ट सामाजिक परिवेश होता है और उस परिवेश से समाज व उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए वह भाषा पूर्णतया समर्थ होती है। प्रत्येक भाषा अपने में विलक्षण होती है। बच्चा किसी भाषिक समुदाय का सदस्य होने के नाते भाषा के नियमों को अपने में आत्मसात करता रहता है और उस भाषा से जीवन भर जुड़ा रहता है। भाषा नैसर्गिक वातावरण में सीखी जाती है। धीरे-धीरे बच्चे की भाषा का विकास होता रहता है जिसमें स्कूल मुख्य भूमिका निभाता है। प्राथमिक स्तर पर ध्वनि, पद और वाक्य की दृष्टि से भाषा का समग्र अधिगम शिक्षण का लक्ष्य होना चाहिए। भाषा बच्चे के अनुभवों से जुड़ी होती है। अतः शिक्षक कक्षा व कक्षा के बाहर ज़्यादा से ज़्यादा गतिविधियाँ आयोजित करके बच्चे के अनुभवों द्वारा उसकी भाषा क्षमता का विस्तार कर सकता है।

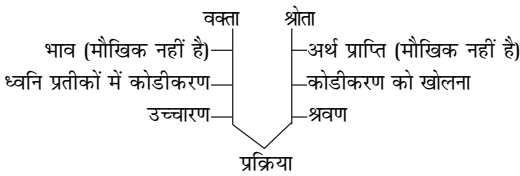
भाषा हमारे दैनंदिन व्यवहार के केंद्र में है। यद्यपि चिपैँजी या डोल्फिन कुछ संकेतों को ग्रहण कर सकती हैं, परन्तु जिस प्रकार की जटिल भाषा-संकेतों का प्रयोग मानव करता है, वह मानवीय कृत भाषाओं की अपनी विशिष्टता है। संस्कृति और मानव व्यवहार की तमाम गतिविधियाँ बिना भाषा के सम्भव नहीं हैं। यह कहना कठिन है कि पहले चिंतन प्रक्रिया शुरु हुई और फिर भाषा का व्यवहार या भाषा व्यवहार से ही हमारी चिंतन

प्रक्रिया को प्रखरता मिली। आज के संदर्भ में यह बात तय है कि भाषा के बिना मानव व्यवहार और चिंतन संभव नहीं है।

भाषा की कोई परिभाषा लिखने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि भाषा संकेतात्मक है, अर्थात् जिन ध्वनियों का हम उच्चारण करते हैं वे प्रतीक मात्र हैं। दूसरी बात यह है कि ये प्रतीक उच्चारित होते हैं। भाषा का लिखित रूप गौण होता है और संसार की अनेक भाषाएँ ऐसी हैं जो आज तक

*एच-883, हाउसिंग बोर्ड कालोनी (पुरानी), मुरैना, मध्य प्रदेश 476001

लिपि बद्ध नहीं हुई हैं। वाचिक संकेतों के अलावा आँगिक संकेतों से भी भाव प्रगट किये जा सकते हैं परन्तु वे बहुत सीमित भावों को प्रगट करने की क्षमता रखते हैं। वाचिक संकेतों के बारे में कहा जाता है कि वे अनगिनत भावों को प्रगट कर सकते हैं। 'With A set of finite symbols, they can express Infinite ideas', भाषा के संबंध में तीसरी बात यह है कि इसका (भाषा का) अपना विशिष्ट सामाजिक परिवेश होता है। उस परिवेश के समाज और उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए वह भाषा या बोली पूर्णतः समर्थ होती है। इन तीन वर्णित आधारों पर हम भाषा को एक सामाजिक व्यवस्था मान सकते हैं जो उच्चारण और श्रवण के ध्वंयात्मक प्रतीकों का समूह है। यह तो भाषा की एक बहुत स्थूल परिभाषा हुई और जैसे-जैसे हम आगे विचार करेंगे, भाषा के अन्य लक्षणों की समीक्षा करते जायेंगे। कुछ मोटे तौर पर भाषा निम्न प्रकार से काम करती है—



जब बच्चा अपने भाषिक समुदाय में रहकर मातृभाषा का अधिगम करता रहता है तो यह प्रक्रिया स्वतः ही चलती रहती है। मातृभाषा किसे कहते हैं। इस संबंध में किसी शास्त्रीय बहस की आवश्यकता नहीं है। मातृभाषा वह है जो बच्चा पैदा होते ही अपनी पारिवारिक-सामाजिक-सामुदायिक परिवेश में बोलते हुए सुनता है। कहीं-कहीं यह प्रश्न उठता है कि पारिवारिक

परिवेश की भाषा और तात्कालिक सामाजिक परिवेश की भाषा में अन्तर होता है। बहुत से बोली क्षेत्रों में ऐसी स्थिति है। वास्तव में मातृभाषा, गढ़वाली, कुमायूनी, भोजपुरी, मैथिली, बृज, अवधी ही होगी। इस प्रकार की स्थिति में स्कूल, कॉलेज और औपचारिक सम्वादों में भाषा दूसरी होगी। इस प्रकार की स्थिति को समद्विभाषिकता (Coordinate bilingualism) की स्थिति कह सकते हैं जहाँ बालक दो भाषाओं की ध्वन्यात्मक संरचना और उसके व्याकरणिक रूप पर एक साथ अधिकार करता जाता है। जहाँ ऐसी दो भाषाओं (हम भाषा और बोली के विवाद में नहीं पड़ रहे हैं) की व्याकरणिक संरचना और शब्द-कोष लगभग समान होता है, केवल धातु और प्रातिपादकों में लगने वाले प्रत्ययों को छोड़कर, वहाँ इस प्रकार की द्विभाषिकता की स्थिति सरल होती है। इन्हें ही समवर्गीय द्विभाषिक कह सकते हैं। प्रायः हिंदी क्षेत्र के वक्ताओं के साथ यही स्थिति है। भाषा और बोली में क्या अंतर है?

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भाषा और बोली में कोई अन्तर नहीं है। भाषा के बोलने वालों का क्षेत्र-विस्तार अधिक हो सकता है, बोली में भावगम्यता (mutual intelligibility) अधिक गहरी होती है। व्यापार अर्थ, शिक्षा, राजनीति आदि कारणों से किसी भाषा क्षेत्र को विशिष्टता मिल जाती है और वहाँ की भाषा-बोली को सामाजिक प्रतिष्ठा। अतः उस क्षेत्र की बोली को भाषा का दर्जा मिल जाता है। गैर-भाषिक कारणों में भाषा और बोली में यह अन्तर बतलाया जा सकता है कि बोली में ललित साहित्य का अभाव होता है और भाषा के बोलने वाले

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक या धार्मिक कारणों से अधिक संभ्रांत (high brow) कहे जा सकते हैं। हम विकास शब्द की बहस में नहीं पड़ रहे हैं क्योंकि भाषा के बोलने वाले ज्यादा 'विकसित' और बोली के बोलने वाले कम विकसित, यह खतरनाक निष्कर्ष है और गलत पैमाने पर आधारित है। वास्तव में भाषागत विशिष्टता की दृष्टि से बोली अधिक सुगठित और लालित्यपूर्ण लोक साहित्य से भरपूर होती है। (अब आगे हम भाषा और बोली शब्दों में कोई भेद नहीं मानेंगे।) बोली या भाषा के संदर्भ में निम्न बातें जानना भी ज़रूरी है—

- ६ प्रत्येक भाषा कुछ ध्वन्यात्मक नियमों से बंधी है।
- ६ प्रत्येक ध्वन्यात्मक प्रतीकों का उस भाषा में एक ही अर्थ होता है।
- ६ पद और पदार्थ का संबंध स्वैच्छिक रूप से निर्धारित है। परन्तु इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है और प्रत्येक व्यक्ति को किसी पदार्थ के लिए स्वयं पद निर्धारित करने की स्वैच्छाचारिता नहीं है।
- ६ भाषा मूलतः मौखिक है (उसका लिखित रूप गौण होता है)।
- ६ प्रत्येक भाषा का अपना एक सामाजिक संसार होता है।
- ६ प्रत्येक भाषा जीवन्त होती है।
- ६ प्रत्येक भाषा का व्याकरणिक विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है, अर्थात् बोली का भी अपना व्याकरण होता है और यह कथन नासमझी भरा है कि बोली का व्याकरण नहीं होता।

- ६ प्रत्येक भाषा अपने में विलक्षण होती है।
- ६ प्रत्येक भाषा श्रेष्ठ होती है। किसी अन्य भाषा के संदर्भ में उसे निम्न/निकृष्ट/अविकसित/पिछड़ी हुई नहीं कहा जा सकता।
- ६ व्याकरण मात्र उस भाषा के मानक रूप को बनाये रखने के नियमों का वर्णन करता है।
- ६ भाषा वर्णनात्मक (descriptive) होती है न कि आदेशात्मक (Prescriptive)।
- ६ बच्चा किसी भाषिक समुदाय का सदस्य होने के नाते उस भाषा के नियमों को स्वयमेव आत्मसात करता है और वह भाषा के जीवन्त रूप से सरोकार रखता है।

भाषा का अधिगम

भाषा के अधिगम की प्रक्रिया में बच्चा जब किसी भाषा का अधिगम करता है तो वह दो स्थितियों का सामना करता है।

1. भाषा के नियम उसे भाषा की समर्थता/क्षमता/सामर्थ्य का भान करवाते हैं परंतु हर बच्चे का उस भाषा के निष्पादन (performance) का स्तर अलग-अलग होती है। भाषा अधिगम के जटिल और गहरे नियमों के अंतर्गत बालक सहजता से उन नियमों के आधार पर अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है क्योंकि उसने उन नियमों को उस परिवेश में रहने के कारण उस भाषिक समुदाय के रूप में निरन्तर आत्मसात कर सकता है। इन नियमों को बच्चे ने तर्क से नहीं सीखा है अपितु ये नियम उसे अन्तःप्रेरणा से प्राप्त हुए हैं। व्यवहारवादी (behaviourists) मानते हैं

कि बच्चे दोहराकर या वयस्क से सुनकर उसे दोहराते हुए सीखते हैं। इसी को वातावरणवादी (Environmentalist) इस तरह कहते हैं कि बच्चे अपने भाषिक समुदाय के वातावरण से भाषा सीखते हैं। हम कुछ सरल शब्दों में भाषा-अधिगम के संबंध में निम्न बातें कह सकते हैं—

- भाषा अधिगम इसलिए सम्भव है कि प्रत्येक बच्चे में अदम्य क्षमता होती है।
- सभी प्रकार का भाषा अधिगम सामाजिक परिवेश में होता है।
- प्रत्येक भाषा का अपना विलक्षण और विशिष्ट विचारों का संसार होता है। बच्चा उस भाषिक समुदाय का सदस्य होने के नाते अपनी आयु और क्षमता के अनुसार उन विचारों के संसार को भी पकड़ता है और उनकी अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषाकौशल भी प्राप्त करता रहता है।
- भाषा नैसर्गिक वातावरण (informal and natural environment) में अधिगमित होती है।
- प्रत्येक दिन और धीरे-धीरे बच्चे के शब्द-भण्डार का विस्तार होता है। (एडगर डेल के अनुसार—कक्षा एक के विद्यार्थी का शब्द भण्डार 3000 शब्दों का होता है और प्रत्येक वर्ष यह शब्द भण्डार 1000 शब्दों की गति से बढ़ना चाहिए।)
- स्कूल में बच्चे का भाषा अधिगम अधिक तीक्ष्ण होता है क्योंकि शिक्षक भी इसमें परिष्कार करते जाते हैं।

शिशु का भाषा व्यवहार

मनावैज्ञानिक मानते हैं कि जन्म के शुरु के दस या ग्यारह महीने शिशु केवल इशारों से अपने भावों को व्यक्त करता है। शिशु शुरु के दस महीनों में अपने वाक्तंत्र का प्रयोग करना सीख जाता है, वह रोता है, कभी-कभी हँसता है। अगले छः महीनों में वह कुछ ध्वनियों का उच्चारण करने लगता है। इस समय बच्चा एकाक्षरी शब्दों का उच्चारण करता है और शायद माँ शब्द वह सबसे पहले बोलता है। शिशु का संचारात्मक व्यवहार उसके परिवेश के वयस्कों के भाषिक व्यवहार पर निर्भर करता है क्योंकि वहीं से नकल करके शिशु भाषिक व्यवहार को प्रगाढ़ करता है। माँ-बाप शिशु के एकाक्षरी (mono-syllabic) शब्दों के वाक्यों को इसलिए समझ लेते हैं क्योंकि वे शिशु के भाषिक व्यवहार से परिचित होते हैं। ढाई से तीन साल के बच्चे जिस भाषा का व्यवहार करते हैं उसे स्व-केंद्रित (ego-centric) उच्चारण कह सकते हैं। इस उम्र के बच्चे के उच्चारण को आंतरिक-वाणी कह सकते हैं। यानि, वह अपने मन में भाषा के माध्यम से विचार करता रहता है। (यहाँ हम इस पर विचार नहीं कर रहे हैं कि क्या भाषा के बिना विचार करना सम्भव है? या नहीं इस संबंध में लम्बी बहस हो सकती है।) उपरोक्त परिस्थिति में तीन प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं—

- (क) नकल और संरचना-संकोच (structural reduction)।
- (ख) नकल और संरचना-विस्तार (structural expansion)।
- (ग) प्रच्छन्न संरचना का आगम।

प्राथमिक स्तर पर भाषा व्यवहार

प्राथमिक स्तर पर भाषा की निम्नलिखित दशाएँ हो सकती हैं—

- ध्वनियाँ**— (1) ध्वनियों को सुनना
 (2) भिन्न-भिन्न ध्वनियों के व्यतिरेक को पहचानना
 (3) विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण भेद को पहचानना
 (4) उम्र के अनुसार गलत उच्चारण भेद को पहचानना
 (5) त्रुटि-विश्लेषण
- पदिम**— (1) पदिमों को अर्थों सहित पहचानना
 (2) शब्द संरचना और अर्थ
 (3) विभिन्न प्रसंगों/संदर्भों में शब्दों की पहचान और उनका वर्गीकरण
- वाक्य**— (1) वाक्य संरचना
 (2) वाक्य अधिगम
 (3) सारांश वाक्यों का व्यवहार
 (4) आयु और भाषिक जटिलता के आधार पर वाक्य संरचनाओं की पकड़।

अवधारणा निर्माण (Concept formation)

प्राथमिक स्तर पर ध्वनि, पद और वाक्य की दृष्टि से भाषा का समग्र अधिगम शिक्षण का

लक्ष्य होना चाहिये। इसमें भाषा की अपनी क्षमता और बच्चे की निर्वहन क्षमता की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। अवधारणाएँ अशरीरी होती हैं। शब्द, पदांश, वाक्यांश या पूर्ण वाक्यों के बिना किसी अवधारणा को शकल देना संभव नहीं है। बच्चा किसी शब्द के सामान्य अर्थ को ग्रहण करते हुए उसके अतर्निहित भाव को पकड़कर उस तक पहुँचता है।

बच्चे की भाषा का संबंध उन अनुभवों से है, जिन्हें वह शारीरिक कार्य करते हुए प्राप्त करता है या उन अनुभवों से भी है जिन्हें वह महसूस करता है अथवा अपने परिवेश में देखता है। अतः इस स्थिति में शिक्षक कक्षा में नयी परिस्थितियों का वर्णन करके बच्चे के अनुभव के संसार को विस्तार दे सकता है। अतः जितनी ज्यादा गतिविधियाँ कक्षा और सह शैक्षणिक गतिविधियों में कक्षा-इतर होंगी, बच्चे की भाषा क्षमता में उतना ही विस्तार होगा।

भाषा क्षमता के साथ मूल्य बोध भी जुड़ा है। इसके लिए भाषिक समुदाय के परिवेश के समाज की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाना चाहिये और बच्चे की सहजता पर पाश्चात्य मान्यताओं के आधार पर अंकुश नहीं लगाना चाहिए।

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा समायोजन का प्रभाव

भावेश चंद्र दुबे*

शिक्षा मानव जगत की धरोहर है जिससे समाज के विकास की सही दिशा व दशा निर्धारित की जाती है। प्रत्येक आवश्यकता मनुष्य में भावनाओं से जुड़कर कर्म का निर्धारण करती है तथा मनुष्य समायोजन द्वारा अपने को स्थिर एवं संतुष्ट रखता है। मनुष्य को किसी कार्य के प्रति अभिप्रेरित कर उसके समायोजन स्तर को बढ़ाया जा सकता है लेकिन अगर कोई व्यक्ति किसी कार्य के प्रति अभिप्रेरित नहीं होता है तो उसके समायोजन को बनाये रख पाना बड़ा ही मुश्किल होता है। देश के विभिन्न राज्यों में शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों की निम्न शैक्षिक उपलब्धियाँ चिन्ता का कारण बनी हुई हैं। यह शास्वत सत्य है कि जिस देश में जिस प्रकार के शिक्षकों का निर्माण होता है वह शिक्षक भी उसी तरह के समाज का निर्माण करते हैं 'शिक्षक समाज का दर्पण हैं'। अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और समायोजन के मध्य सार्थक संबंध हैं। विद्यार्थियों को मिलने वाली शैक्षिक अभिप्रेरणा उनके विद्यालय में अच्छे समायोजन तथा उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सहायक होती है। शैक्षिक अभिप्रेरणा द्वारा विद्यार्थियों की असमायोजन असफलता और निम्न शैक्षिक उपलब्धि की समस्या को सुलझाया जा सकता है तथा शिक्षा के अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

मानवीय जीवन आवश्यकताओं एवं भावनाओं का से जुड़कर क्रम का निर्धारण करती है तथा मनुष्य मेल है, प्रत्येक आवश्यकता मनुष्य में भावनाओं समायोजन के द्वारा अपने को स्थिर एवं संतुष्ट रखता

*18 A/C उदित महानगर (पानी की टंकी के पास), बरेली, उत्तर प्रदेश

है। मनुष्य जब इस पृथ्वी पर आता है तो उसकी एक ही आवश्यकता होती है केवल भूख। लेकिन जैसे-जैसे इस संसार से संबंध जोड़ता जाता है वैसे-वैसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। अतः उन आवश्यकताओं को पूर्ण करने एवं उसके साथ समायोजन बैठाने के लिए मनुष्य के शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक एवं नैतिक विकास आवश्यक है जो केवल शिक्षा के माध्यम से ही संभव है, डॉ. एस. राधाकृष्णन के शब्दों में—

“शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है न यह विचारों की समर्थन स्थली है और न ही नागरिकता की पाठशाला है। यह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा है, सत्य की खोज में लगी मानव आत्मा का प्रशिक्षण है।”

इस प्रकार शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास का आधार है। अतः शिक्षा मानव में मानवता का विकास करने का साधन है। जिससे मनुष्य की पशुता को दूर कर सामाजिक मान्यताओं एवं परंपराओं को परिष्कृत कर सामंजस्य बैठाया जा सकता है। इसलिए शिक्षा को प्राण वायु कहा गया है। यही शिक्षा समाज की प्रेरणा है उसकी ऊर्जा है। इसी आधार पर राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा प्राप्त किये गए शैक्षिक स्तर पर निर्भर करता है। शैक्षिक स्तर का संबंध इससे है कि हमारे विद्यालयों में क्या और कैसे पढ़ाया जा रहा है। हमारे विद्यालयों से बच्चों का पलायन आज भी जारी है जिससे हम अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या से जूझ रहे हैं इसके कई कारण विद्यमान हैं

जैसे—पाठ्यचर्या का अरुचिकर व एक मार्गोय होना, छात्रों को करके सीखने का अवसर कम उपलब्ध होना। इसके साथ ही शिक्षकों का अभाव तथा शिक्षकों का प्रेरणा तथा कर्तव्य भावना से विमुख होना भी इसके मुख्य कारण हैं। इसलिए विद्यालय स्तर पर बहुत से विद्यार्थियों को असफलता प्राप्त होती है। अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का उद्देश्य केवल प्रमाण-पत्र प्राप्त करने से होता है और वह अपने प्रशिक्षण विद्यालय के साथ समायोजन इस स्तर तक बनाते हैं। कि उन्हें बिना किसी प्रयास के प्रमाण-पत्र प्राप्त हो जाए। अब प्रश्न यह है कि जिस विद्यार्थी की शैक्षिक अभिप्रेरणा सकारात्मक है तथा उसका समायोजन सकारात्मक है, उसका उसकी शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है यह एक जाँच का प्रश्न है। शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों के निम्न शैक्षिक उपलब्धि अर्थात् अपने प्रशिक्षण में पारंगत न होना, यह पूरे समाज के सामने एक कठिन प्रश्न खड़ा करता है। जैसे विद्यालयों में भौतिक संसाधनों के होते हुए भी सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं। हमारे भारतीय समाज से नैतिक मूल्य, संस्कृति, धर्मपरायणता, कर्तव्यपरायणता इत्यादि जैसे शब्दों से विश्वास उठता चला जा रहा है।

देश के विभिन्न राज्यों में शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की निम्न शैक्षिक उपलब्धि और विफलता का घटना क्रम सम्पूर्ण देश के शिक्षाविदों, शिक्षकों, निर्देशनप्रदाताओं एवं परामर्शदाताओं तथा शैक्षिक नियोजनकर्ताओं के लिए गम्भीर चिंता का कारण बना हुआ है। यह शास्वत सत्य है कि जिस देश में जिस प्रकार के शिक्षकों का निर्माण होता है

वह शिक्षक भी उसी तरह के समाज का निर्माण करते हैं। 'शिक्षक समाज का दर्पण है'। लेकिन दर्पण की सफाई ठीक से न हो तो वह तस्वीर को साफ नहीं दिखाएगा ठीक यही व्यवस्था समाज के साथ जुड़ी है अगर शिक्षक का प्रशिक्षण उपयुक्त ढंग से न हो तो वह समाज का निर्माण अधूरा करेगा, तथा समाज में असंतोष, भ्रष्टाचार तथा व्यभिचार जैसी कुरितियाँ फैल जायेंगी।

पूर्व में किये गये शोध—विल्सन एफ.एच. (1976) ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण एवं उनकी उच्च शैक्षिक उपलब्धि उनके माता-पिता की उनके शैक्षिक मामलों या कार्यों में रुचि से जुड़ी हुई हैं। गरीगोटोय एस.एम. (1984) ने पाया कि माता-पिता की विशेषताओं तथा व्यवहार का प्रभाव बालकों के समायोजन पर पड़ता है। सक्सेना वन्दना (1988) ने पाया कि विभिन्न प्रकार के पारिवारिक संबंध रखने वाले विद्यार्थियों के सामयोजन, अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है। गर्ग चित्रा (1992) ने पारिवारिक संबंधों, सामाजिक आर्थिक स्थिति, बुद्धि तथा विद्यार्थियों के समायोजन में सार्थक संबंध पाया। अग्रवाल, रेखा (1998) ने पाया कि माता-पिता द्वारा प्रदान किया गया निर्देशन व पथ प्रदर्शन बालकों के अधिक अच्छे शैक्षिक दृष्टिकोण एवं शैक्षिक उपलब्धि में योगदान करता है। अग्रवाल, कुसुम (1999) ने पाया कि असफल एवं उपेक्षित विद्यार्थियों का समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि का स्तर निम्न था। उनके अनुसार अभिभावकों का व्यवहार विद्यार्थियों के समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करता है।

कुमार, सुभाष (2003) ने पाया कि माता-पिता का विद्यार्थियों की शैक्षिक क्रियाओं में सहभागिता का प्रभाव समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। ज्ञानानी (2003) ने पाया कि विद्यार्थियों को मिलने वाली अभिप्रेरणा तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक संबंध होता है। त्रिपाठी, कुमुद (2004) ने पाया कि विद्यार्थियों में शैक्षिक उपलब्धि पर उपलब्धि प्रेरणा का अधिक प्रभाव पड़ता है, जबकि लिंग व परिवेश का प्रभाव नहीं पड़ता है। विद्या प्रतिभा (2006) ने पाया कि विद्यार्थियों में तनाव का 40% कारण विद्यालय है। बालिकाएँ भारतीय परिप्रेक्ष्य में संकीर्ण होती हैं। इसलिए वे गुरुजनों एवं सहपाठियों से तुरन्त घुल-मिल नहीं पाती हैं। साथ ही पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भी कम ही भाग ले पाती हैं जबकि बालकों के साथ ऐसा नहीं है। विद्यालयी गतिविधियों में वह बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। पंवार एवं उनिपाल (2008) ने पाया कि बालक-बालिकाओं के पारिवारिक, सामाजिक, स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक समायोजन के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं है। जबकि विद्यालयी समायोजन में सार्थक अन्तर है।

अध्ययन का औचित्य—समाज का निर्माणकर्ता शिक्षक होता है तथा समाज ने शिक्षक का निर्माण करने हेतु शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों का संचालन कर रखा है लेकिन अगर प्रत्येक शिक्षक-प्रशिक्षण कालेजों का अवलोकन किया जाय तो यह विदित होता है कि धीरे-धीरे शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में कर्तव्यबोधता खत्म हो रही है। यह जानना आवश्यक है कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थी में अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा समायोजन का स्तर ठीक हो तो उनकी उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी जानकारी

प्राप्त हो जाए तो उपलब्धि स्तर के माध्यम से विद्यार्थी के समायोजन तथा शैक्षिक अभिप्रेरणा का पता लगाया जा सकता है।

अध्ययन का शीर्षक—विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा समायोजन का प्रभाव।

अध्ययन के उद्देश्य

- विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
- विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन करना।
- विद्यार्थियों के अभिप्रेरणा तथा समायोजन के मध्य संबंध का अध्ययन करना।
- विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर शैक्षिक अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन करना।
- विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर समायोजन के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

- विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा उनके समायोजन के मध्य सार्थक संबंध नहीं है।
- विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा उनके शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक संबंध नहीं है।

प्रतिदर्श—प्रस्तुत अध्ययन हेतु हरियाणा शिक्षा बोर्ड की कक्षा 12 के 60 विद्यार्थियों को लिया गया। प्रतिदर्श का चयन यादच्छिक प्रतिचयन के आधार पर किया गया।

उपकरण—शैक्षिक अभिप्रेरणा के अध्ययन हेतु टी. आर. शर्मा द्वारा निर्मित 'एकेडमिक एचीवमेन्ट मोटीवेशन टेस्ट' का प्रयोग किया गया। समायोजन के अध्ययन हेतु ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह द्वारा निर्मित 'एडजेस्टमेंट इवेंटरी फार स्कूल स्टेडेंट' का प्रयोग किया गया। शैक्षिक उपलब्धि के रूप में विद्यार्थियों के कक्षा 11 के प्राप्तांकों को लिया गया।

प्रदत्त विश्लेषण—संग्रहीत प्रदत्तों से निष्कर्ष निकालने हेतु कार्ल पीयरसन द्वारा प्रतिपादित 'गुणनफल आघूर्ण विधि', से चारों के मध्य सह-संबंध की गणना की गयी।

परिणाम एवं विवेचना—प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य हरियाणा राज्य के उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि के साथ सह-संबंध ज्ञात करना था। अध्ययन की सुविधा के लिए शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों के आधार पर विद्यार्थियों को निम्न शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह, उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह में रखा गया।

तालिका 1

निम्न अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (x) एवं समायोजन (y) के मध्य सह संबंध गुणांक

फलांकों का योग (Sum of scores) scores)		मध्यमान (mean)		वर्गों का योग (Sum of squares)		गुणनफल का योग (Sum of multiplication)	सह संबंध गुणांक (Coefficient of correlation)
Ex	Ey	\bar{x}	\bar{y}	Ex^2	Ey	Exy	(r)
814.00	401.00	27.13	13.36	17726	290.68	-174.45	-0.76

उपरोक्त तालिका विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलाँकों तथा समायोजन के फलाँको के मध्य सह-संबंध उच्च सह संबंध है। गुणाँक (r) का मान -0.76 है। इससे स्पष्ट होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं समायोजन के मध्य उच्च सह संबंध है।

तालिका 2

उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (x) एवं समायोजन (y) के मध्य सह संबंध गुणाँक

फलाँको का योग (Sum of scores)		मध्यमान (mean)		वर्गों का योग (Sum of squares)		गुणनफल का योग (Sum of multiplication)	सह संबंध गुणाँक (Coefficient of correlation)
Ex	Ey	\bar{x}	\bar{y}	Ex ²	Ey	Exy	(r)
992.00	230.00	33.06	07.66	83.76	280.50	-86.41	-0.56

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलाँकों तथा समायोजन फलाँकों के मध्य सह-संबंध गुणाँक (r) का मान -0.56 है जिससे स्पष्ट होता है कि उच्च अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा समायोजन के मध्य सामान्य सह-संबंध है।

विवेचना—तालिका 1 तथा 2 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं समायोजन के फलाँको के मध्य उच्च तथा सामान्य ऋणात्मक सह-संबंध को प्रदर्शित करती है। अर्थात् शैक्षिक अभिप्रेरणा के

फलाँकों में वृद्धि होती है तो समायोजन के फलाँकों में कमी होती है। समायोजन अनुसूची की अँकन विधि के अनुसार फलाँकों की कम मात्रा अधिक समायोजन को प्रदर्शित करती है। अतः इसका अर्थ है कि अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा अधिक है तो विद्यार्थी का समायोजन भी अधिक होगा और अगर शैक्षिक अभिप्रेरणा कम है तो विद्यार्थी का समायोजन भी कम होगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और समायोजन के मध्य सार्थक संबंध है।

तालिका 3

निम्न शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (x) एवं शैक्षिक उपलब्धि (y) के मध्य सह संबंध गुणाँक

फलाँको का योग (Sum of scores)		मध्यमान (mean)		वर्गों का योग (Sum of squares)		गुणनफल का योग (Sum of multiplication)	सह संबंध गुणाँक (Coefficient of correlation)
Ex	Ey	\bar{x}	\bar{y}	Ex ²	Ey	Exy	(r)
814.00	10507.00	27.13	350.23	117.26	12545.28	1167.86	0.78

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि निम्न शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के फलाँकों एवं शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलाँकों के मध्य

सह-संबंध गुणाँक (r) का मान 0.78 है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य उच्च सह-संबंध है।

तालिका 4

उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा (x) एवं शैक्षिक उपलब्धि (y) के मध्य सह संबंध

फलांकों का योग (Sum of scores)		मध्यमान (mean)		वर्गों का योग (Sum of squares)		गुणनफल का योग (Sum of multiplication)	सह संबंध गुणांक (Coefficient of correlation)
Ex	Ey	x̄	ȳ	Ex ²	Ey	Exy	(r)
992.00	12211.00	33.06	407.03	83.76	30446.94	1345.91	.84

उपरोक्त तालिका का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों एवं शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों के मध्य सह-संबंध गुणांक (r) का मान 0.84 है। इससे वह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य उच्च सह-संबंध है।

स्पष्टीकरण—तालिका 3 और 4 शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों के मध्य उच्च तथा अति उच्च धनात्मक सह-संबंध को प्रदर्शित करती है अर्थात् शैक्षिक अभिप्रेरणा के फलांकों में वृद्धि होती है तो शैक्षिक उपलब्धि के फलांकों में भी वृद्धि होती है अतः इससे यह सिद्ध होता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा अधिक होती तो उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी ज्यादा होगी अगर जिन विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा कम होगी तो उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी कम होगी। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक संबंध है।

निष्कर्ष एवं सुझाव—उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, उनके समायोजन तथा

शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सह-संबंध होता है। विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा, उनके समायोजन तथा शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करती है। जब विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा उच्च स्तर की होती है तो उनके समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि का स्तर भी उच्च होता है।

अध्ययन के परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों को मिलने वाली शैक्षिक अभिप्रेरणा उनके विद्यालय में अच्छे समायोजन तथा उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने में सहायक होती है। अतः अध्यापकों, अभिभावकों, परामर्श दाताओं एवं निर्देशन कार्यकर्ताओं से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं के समाधान में उनकी सहायता करें तथा विद्यार्थियों को इस प्रकार अभिप्रेरित करें कि वे विद्यालय एवं आसपास के वातावरण के साथ उपयुक्त समायोजन करते हुए उच्च शैक्षिक उपलब्धि को प्राप्त करें। शैक्षिक अभिप्रेरणा द्वारा विद्यार्थियों की असमायोजन, असफलता और निम्न शैक्षिक उपलब्धि की समस्या को सुलझाया जा सकता है तथा शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

संदर्भ

- गर्ग, चित्र. 1992. “ए स्टडी ऑफ़ फैमिली रिलेशन सोशियो इकोनामिक स्टेट्स इटेलीजेंस एंड एडजस्टमेंट ऑफ़ फेल्ड हाईस्कूल स्टूडेंट्स” *फिफथ सर्वे ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च*, वाल्यूम-1728-730
- पंवार, एस. 2008. ‘उच्च प्राथमिक स्तर के बालक बालिकाओं के समायोजन एवं माता-पिता का उनके प्रति व्यवहार का एक तुलनात्मक अध्ययन *प्राथमिक शिक्षक*, वर्ष 33 अंक 1, जनवरी 2008
- प्रतिभा, सी.एस. 2006. “रोल ऑफ़ पेरेंट्स इन हेल्पिंग एडोलसेट्स विद स्ट्रेस” *एक्सपैरिमेंट इन एजुकेशन*, वाल्यूम 34 नं. 8 पेज 165
- सिंह, एस.के. 2007. ‘प्राथमिक शिक्षा : बुनियादी आवश्यकता’, *कुरुक्षेत्र*, वर्ष 53 अंक 11, सितम्बर 2007
- त्रिपाठी, कुमुद. 2004. “माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव” एक अध्ययन, *भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका*, वर्ष 23, अंक 1, जनवरी- जून 2004

मार्जरी साइक्स

शिक्षा-सादगी, सौंदर्य और समानता के लिए

अनिल सेठी*

मार्जरी साइक्स (1905-1995) ने कई वर्षों तक महात्मा गाँधी और रविंद्र नाथ ठाकुर के साथ एक अध्यापिका की हैसियत से काम किया। उन्होंने इन दोनों के शिक्षा संबंधी विचारों का सफलतापूर्वक समावेश किया। साइक्स जन्म से ब्रिटिश थीं। 1928 ई. में वे भारत आईं, 1990 के दशक तक यहाँ रहीं और उन्होंने सेवाग्राम और शांति निकेतन समेत कई जगहों पर पढ़ाया। अपने मार्गदर्शकों की तरह साइक्स 'स्कूली पढ़ाई' और 'शिक्षा' में स्पष्ट अंतर करती थीं। वे यह भी मानती थीं कि किसी भी बुद्धिमान अध्यापक को यह जानना चाहिए कि कब बच्चों को अपनी मनमानी करने के लिए अलग छोड़ दिया जाए और कब अध्यापक पीछे हट जाए ताकि उनकी गतिविधि में दखल दिए बिना उन्हें समझ सके। साइक्स के शैक्षिक विचार, चिंतन और काम की कई धाराओं से निकले पर अंततः उनकी चेष्टा थी—सादगी, सौंदर्य और समानता की ओर ले जाने वाली शिक्षा का प्रवर्तन।

मार्जरी साइक्स (1905-1995) उन विदेशियों में से थीं जिन्होंने भारतीयता को अपनाया था क्योंकि भारत उन्हें असाधारण रूप से लुभाता था। इस सम्मोहन का अनुभव उन्हें पहले-पहल हमारे स्वतंत्रता संग्राम के कुछ शिखर व्यक्तित्वों के जीवन और कृतित्व के माध्यम से हुआ।

साइक्स जन्म से ब्रिटिश थीं। वे चैन्नई के बेंटिक गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ाने के लिए 1928 के शरद में भारत आईं। 1990 के दशक तक वे यहीं रहीं और इस दौरान वे गाँधीजी, रवींद्रनाथ ठाकुर और सी.एफ. ऐण्ड्रयूज जैसे व्यक्तित्वों तथा विभिन्न ईसाई परंपराओं—

*प्रोफेसर-इतिहास, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और पशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

विशेषकर क्वेकर¹ परंपरा से प्रेरित अनेक तरह के विचारों, गतिविधियों और परियोजनाओं में लीन रहीं। वृद्धावस्था में भी साइक्स सक्रिय और प्रभावी थीं। उन्होंने अपने जीवन का चित्रांकन एक विराट फलक पर किया। आध्यात्मिकता, सादगी, प्रकृति से जुड़ाव, पैदल सैर, पर्वतारोहण, दस्तकारी, भाषाएँ, नाटक, दर्शनशास्त्र, लेखन, ग्राम सुधार, शांति आंदोलन, राजनय तथा समझौता वार्ता, क्वेकर गतिविधियाँ, अपने मार्गदर्शकों के विचार... दिन रात वे इन्हीं सब में रमी रहती थीं। इन सभी से वे कुछ न कुछ सीखने और लोगों को भी इनके बारे में जानकारी देने की कोशिश करती थीं। इसलिए उनके शिक्षा संबंधी विचारों ने इनमें से अनेक अभिरुचियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है, पर अंततः उनकी चेष्टा थी—सादगी, सौंदर्य और समानता की ओर ले जाने वाली शिक्षा का प्रवर्तन।

उनका जन्म यार्कशायर के एक कम साधन संपन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता कोयला खानों के इलाके के गरीब देहाती स्कूलों में हेड मास्टरी करते थे। मार्जरी तथा उनके दो भाई-बहनों का पालन-पोषण अपेक्षाकृत गरीबी की स्थिति में हुआ था मगर साथ ही उन्हें मितव्ययिता, स्वच्छता और धर्मपरायणता के संस्कार भी मिले थे। उनकी

स्कूली शिक्षा हडर्स फ्रील्ड इलाके के स्थानीय स्कूलों में हुई थी पर कॉलेज स्तर पर अँग्रेजी के अध्ययन के लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिली और वे केम्ब्रिज के न्यूहम कॉलेज में दाखिला ले सकीं। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान वे अक्सर अपने पिता के साथ उनकी परियोजनाओं पर काम किया करती थीं। उनके पिता मशीनों के व्यावहारिक मॉडलों के डिजाइन बनाने की कोशिश करते थे जो इतने आसान हों कि स्कूलों के बच्चे उन्हें खुद बना और चला सकें और जिनके जरिए वे दैनिक जीवन में काम आने वाली मशीनों के बारे में भी जानकारी हासिल कर सकें। वे बच्चों के लिए विनोद भाव, सुंदरता या रहस्य भाव के आधार पर चुनी हुई कविताओं की पुस्तिकाएँ निकाला करते थे। वे इतिहास का पुनर्कथन इस तरीके से करते थे जो पाठकों की मानवीय सहानुभूति को जाग्रत करे। इन सब कामों में वे मार्जरी को भी शामिल करते थे जो बड़े उत्साह से हाथ से बनी किताबों की सिलाई किया करती थीं। उन्हें यह काम कभी नीरस बोझ-सा नहीं लगा²। साइक्स ने केंब्रिज में अँग्रेजी का ट्राइपॉस (ऑनर्स डिग्री) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इसके लिए उन्होंने विलियम ब्लेक पर एक लघु शोध प्रबंध लिखा था। वे आसानी से अँग्रेजी विषय में अपनी उच्चतर शिक्षा जारी रख

¹ क्वेकर-यह मत ईसाई धर्म में से उभरा एक आंदोलन है जिसमें शांति के सिद्धांतों पर बल रहता है। क्वेकर लोग औपचारिक सिद्धांतों, धर्म संस्कारों तथा दीक्षित पादरियों की परंपरा का पालन नहीं करते और उनकी आस्था स्वानुभव की आंतरिक सत्ता में होती है। क्वेकर लोग आध्यात्मिक समानता पर बल देते थे, इसलिए सामाजिक न्याय के प्रति वे संवेदनशील होते थे। भारत की राष्ट्रीय भावना के प्रति उन्हें सहानुभूति थी और उनमें अनेक जन महात्मा गाँधी के विश्वस्त मित्र थे। साइक्स इस आंदोलन तथा भारत में इसके कार्यों से इतनी प्रभावित थीं कि उन्होंने इन पर एक किताब भी लिखी-*क्वेकर्स इन इंडिया : अ फॉरगॉटन सेंचुरी* (लंदन 1980)।

² साइक्स के जीवन और कृतित्व के बारे में ब्यौरे या तो स्वयं उनके लेखन से लिए गए हैं, या मार्था डार्ट की *मार्जरी साइक्स-क्वेकर गाँधीयन* (लंदन, तिथि अज्ञात) से। डार्ट की पुस्तक ही शायद मार्जरी साइक्स की एकमात्र जीवनी है। मैंने इसके इलेक्ट्रॉनिक संस्करण का इस्तेमाल किया है। www.arvindguptatoys.com पर 'बुक्स ऑन एजुकेशन' लिंक के जरिए यह पुस्तक उपलब्ध है। अरविंद गुप्ता प्रसिद्ध विज्ञान शिक्षाविद हैं। वे बच्चों के लिए शैक्षिक खिलौने भी बनाते हैं।

सकती थीं, लेकिन अपने पिता के कार्यों के प्रति आकर्षण के कारण उन्होंने स्कूलों में अध्यापन को चुना। उन्होंने अध्यापन का प्रशिक्षण लेते हुए केंब्रिज में एक वर्ष और बिताया जिसके समापन पर उन्होंने अफ्रीका और एशिया में शिक्षण के अवसरों की तलाश शुरू की। जब उन्हें मद्रास में लंदन मिशनरी सोसाइटी द्वारा संचालित बेंटिक हार्ड स्कूल में काम करने का प्रस्ताव मिला तो उन्होंने सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया।

बेंटिक स्कूल में साइक्स को अपने पालन-पोषण के तरीके और पूर्व प्रशिक्षण का अच्छा लाभ मिला। अपने माता-पिता को देखकर वे समझ चुकी थीं कि बच्चों को अन्वेषण और उपलब्धि से, मौज-मस्ती और साहसिक कार्यों से, कल्पना और करुणा से किस प्रकार उत्साहपूर्ण प्रेरणा मिलती है। उनके पिता कभी भी व्यक्तियों, सामाजिक समूहों और राष्ट्रों को किसी रूढ़िवादी रूपरेखा में रखकर नहीं देखते-दिखाते थे। उन्होंने बेटी को यह भी सिखाया था कि 'अपना कर्तव्य निजी आकांक्षाओं से प्रभावित हुए बिना निभाना चाहिए, केवल एक ही बात मायने रखती है... निःस्वार्थी होकर सीखना³। आगे चलकर भारत में मार्जरी को 'निष्काम कर्म' की अवधारणा के रूप में इस बारे में और सीखना था। इसके अतिरिक्त केंब्रिज में उनके अध्यापकों ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय शांति और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में योगदान करने की प्रेरणा दी थी। उनमें से बहुत से लोग इसे ईसा मसीह का संदेश मानते थे जिसे युवा दिमागों तक पहुँचाना था, और

वह ऐसी शिक्षा के जरिए जो उन्हें 'विश्व के स्तर पर सोचना लेकिन स्थानीय स्तर पर काम करना' सिखाए। जो भी हो, नौ वर्ष की कच्ची उम्र में भी मार्जरी को युद्ध से नफ़रत थी। यह बात उन्हें हमेशा-हमेशा याद रहती थी कि जब प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ तो किस प्रकार 'माहौल में महाविनाश का गहन आभास छाया रहता था', और यह कि युद्धजनित वैर ने कैसे एक प्रिय जर्मन शिक्षिका को अचानक ही 'विदेशी शत्रु' में बदल दिया था।⁴ सन् 1928 में बेंटिक एक अपेक्षाकृत छोटा स्कूल (किंडरगार्टन से अंतिम कक्षा तक जिसमें 350 से भी कम बच्चे थे) और घनिष्ठ रिश्तों में बँधा समूह था। इसमें एक छात्रावास भी था हालाँकि सारे छात्र इसमें नहीं रहते थे। सभी अध्यापक और छात्र एक दूसरे को पहचानते थे 'और एक बड़े परिवार की तरह एक दूसरे का ख्याल रखते थे'। चेन्नई की जलवायु को देखते हुए स्कूल में कम-से-कम फर्नीचर रखा जाता था और इसके सदस्य कभी-कभार ही चप्पल पहनते थे। वे नंगे पैर चलते-फिरते और फ़र्श पर बिछी चटाइयों पर सोते थे। छात्रावास में हर बच्चे के कपड़े और निजी वस्तुएँ एक छोटे से बक्स में ही समा जाती थीं। अलग-अलग धर्म और जातियों के बच्चों को बराबरी के दर्जे पर दाखिला दिया जाता था और छात्रावास के संवासियों की जाति कुछ भी हो, वे सभी एक ही रसोई में बना हुआ एक ही खाना खाते थे। ऐसा भी होता ही रहता था कि ब्राह्मण छात्र 'नीची जात' के लोगों की जूटी पतलें उठाते थे या उनके जूटे बर्तन माँजते थे।

³मार्था डार्ट, मार्जरी साइक्स, क्वेकर गौंधियन, पृ.8

⁴वही, पृ. 9

प्रिंसिपल की हैसियत से मार्जरी साइक्स ने प्रतियोगिताओं और पुरस्कारों तथा 'उनसे भड़कने वाली स्व-केंद्रित प्रतिद्वंद्विता'⁵ पर रोक लगा दी। उन्होंने सहयोग के मूल्यों पर बल दिया और इस तरह की व्यवस्था स्थापित की जिसमें तेज छात्रों को पढ़ाई में मंदबुद्धि छात्रों की मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था—'वयस्कों की तुलना में वे इसे कहीं अधिक प्रभावी ढंग से करते थे।'⁶ शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों की योजना कुछ एक सितारों को श्रेष्ठ प्रदर्शन करके पुरस्कार जीतने की खातिर प्रशिक्षित करने के लिए नहीं 'बल्कि हर बच्चे के स्वास्थ्य तथा कौशल में सुधार लाने के लिए'⁷ बनाई जाती थी।

बेंटिक तथा साइक्स 'पाठ्य विषय' तथा 'पाठ्येतर गतिविधियों में कोई अंतर नहीं करते थे, जो अंतर बहुत-से भारतीय स्कूल हमेशा से रखते आए हैं। (सन् 2005 के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के ढाँचे का उद्देश्य इस अंतर को समाप्त करना है।) उदाहरण के लिए उस स्कूल में अँग्रेजी और संगीत साथ-साथ पढ़ाए जाते थे। झाड़ू लगाना, इमारत की सफ़ाई, बागबानी आदि का उतना ही महत्त्व था जितना लिखना, पढ़ना, गणित आदि सीखने का। सफ़ाई, बागबानी आदि को शिक्षा की केंद्रीय चिंता माना जाता था। यह बात साइक्स ने

जितनी स्वयं अपनी शिक्षा-दीक्षा से सीखी थी, उतनी ही गाँधी तथा रवींद्रनाथ ठाकुर से। इस सोच को केवल बेंटिक ही नहीं बल्कि हर उस जगह लागू किया गया जहाँ-जहाँ उन्होंने पढ़ाया था। गाँधीजी ने 1937 में जब अपने शिक्षा संबंधी कार्यक्रम की प्रथम सार्वजनिक घोषणा की थी, तब इसी सोच के कारण उसे लेकर मार्जरी इतनी उत्साहित हो उठी थीं। गाँधीजी की नयी तालीम के रूप में समर्पित और कार्यान्वित इन विचारों का अन्यत्र विस्तृत विश्लेषण किया गया है।⁸ यहाँ इतना ही कह देना काफ़ी है कि गाँधीजी शिक्षा कार्य में दैनिक जीवन तथा कार्यों के संसाधनों के इस्तेमाल के आग्रही थे। शिक्षा का लक्ष्य जीवन को समझना और जिस रूप में वह सामने आए, उसी रूप में उसका सामना करना है। लेकिन शिक्षाभ्यास को भी स्वयं जीवन के अंदर से होकर ही संरचित भी किया जाना था। इस गाँधीवादी प्रतिमान का आशय था कि शिक्षार्थी स्वयं अपने अस्तित्व की स्थितियों और अपने समाज से सक्रिय रूप से जुड़ा रहे ताकि वह अतिश्रम और शोषण से अपनी मुक्ति की राह तलाश सके। जैसाकि गाँधीजी जोर देकर कहते थे, 'शिक्षा ही सच्ची आजादी देती है'⁹ लेकिन यह तभी संभव है जब यह 'बच्चों या बड़ों के

⁵ जहाँगीर पी. पटेल तथा मार्जरी साइक्स, *गाँधी : हिज़ गिफ्ट ऑफ़ द फ़्राइट* (गोवा 1987) पृ. 43

⁶ वही

⁷ वही, पृ. 44

⁸ उदाहरण के लिए दे. मार्जरी साइक्स, *द स्टोरी ऑफ़ नई तालीम-फ़िफ्टी इयर्स ऑफ़ एजुकेशन एट सेवाग्राम; 1937-1987* (सेवाग्राम, 1987); कृष्ण कुमार, 'लिसनिंग टु गाँधी'- रजनी कुमार, अनिल सेठी और शालिनी सिक्का (संपादक), *स्कूल, सोसाइटी, नेशन - पॉपुलर एसेज इन एजुकेशन* (दिल्ली, 2005) में संकलित; जी. रामानाथन, *एजुकेशन फ्रॉम ड्यूई टु गाँधी-द थ्योरी ऑफ़ बेसिक एजुकेशन* (मुंबई, 1962); सीतारमैया, *बेसिक एजुकेशन-द नीड ऑफ़ टुडे* (वर्धा, 1952); और अनिल सेठी, 'एजुकेशन फॉर लाइफ़, थू लाइफ़-अ गाँधीयन पैराडाइम', *क्रिस्टोफ़र विंच के फ़र्स्ट महात्मा गाँधी मेमोरियल लेक्चर* (नयी दिल्ली 2007) में।

⁹ जे.डी. सेठी द्वारा *गाँधी टुडे* (दिल्ली 1978) में प्रकाशित लेख 'अ गाँधीयन क्रिटिक ऑफ़ मॉडर्न इंडियन एजुकेशन इन रिलेशन टु इकॉनॉमिक डेवलपमेंट' में उद्धृत, पृ. 126

देह, मन और आत्मा में जो भी सर्वश्रेष्ठ है उसे समग्र रूप से बाहर ला सके'¹⁰। 31 जुलाई 1937 के *हरिजन* में गाँधीजी ने इस विषय में जो एक छोटा-सा अनुच्छेद प्रकाशित किया था उसने साइक्स को अंदर तक झकझोर दिया—‘उन गिने-चुने वाक्यों ने मेरे दिमाग से बाकी सब कुछ निकाल फेंका। मैं उद्दीप्त हो उठी। मैं उन्हें बार-बार पढ़ती रही और मुझे अब भी स्पष्ट रूप से शब्दशः याद है कि मेरे दिमाग में कौन-सी बात आई थी—‘आखिर अब ऐसा कोई है जो शिक्षा के बारे में सचमुच समझदारी से कुछ कह रहा है।’ मैं उत्सुकता से *हरिजन* के आगामी अँकों की प्रतीक्षा करने लगी और गाँधीजी के प्रस्ताव से जो विवाद उठे थे उनका अध्ययन करती रही।'¹¹ सन् 1939 में रवींद्रनाथ ठाकुर ने मार्जरी साइक्स को ‘अँग्रेजी संस्कृति की प्रतिनिधि’¹² के रूप में शांति निकेतन में पढ़ाने को बुलाया। यह एक दुर्लभ अवसर था। इससे साइक्स को न केवल रवींद्रनाथ के शिक्षा तथा सामुदायिक सहजीवन के प्रयोगों को निकट से देखने का अवसर मिला, बल्कि वे इस बात का भी अध्ययन कर सकीं कि गाँधीवादी पद्धति से उसका कहाँ मेल है। रवींद्रनाथ तथा गाँधी के बीच अनेक संपर्क सूत्र थे और गाँव और शांति निकेतन के बीच आवागमन बना रहता था। साइक्स को तमिल तथा हिंदी का तो अच्छा ज्ञान था ही, अब उन्होंने शीघ्र ही बांग्ला भी सीख ली और बड़ी सहजता से शांति निकेतन के सांस्कृतिक तथा बौद्धिक जीवन में

शामिल हो गई जिसमें थे—फूल और भित्तिचित्र, वस्त्र बुनाई और काष्ठशिल्प, कविता और संगीत, नृत्य और नाटक तथा धार्मिक संवाद की स्वतंत्रता। छात्राओं तथा ईसाई विद्यार्थियों के लिए उनका घर विशेष आकर्षण का केंद्र सिद्ध हुआ। ईसाई विद्यार्थी धार्मिक उलझनों पर विचार-विमर्श के लिए या क्वेकर पत्रिका *द फ्रेंड* पढ़ने के लिए आया करते थे तो छात्राएँ एक अधिक जानकार तथा अनुभवी, पर साथ ही अत्यंत सुहृद महिला से व्यक्तिगत सलाह तथा प्रेरणा लेने आती थीं। बांग्ला भाषा पर साइक्स का क्रमशः इतना अधिकार हो गया था कि कवि ने उनसे अपनी कुछ रचनाओं का अँग्रेजी में अनुवाद करने का आग्रह तक किया।

बैंटिक तथा शांति निकेतन के अतिरिक्त मार्जरी साइक्स ने चेन्नई के वीमॅन्स क्रिश्चियन कॉलेज, सेवाग्राम तथा कई अन्य संस्थानों में भी अध्यापन किया था। उनके कार्य, उनकी लिखी पुस्तकों तथा उनके बारे में इधर-उधर बिखरे लेखन से स्पष्ट समझ में आता है कि वे रवींद्रनाथ तथा गाँधी की विश्व दृष्टियों को समझना तथा संश्लेषित करना चाहती थीं, विशेषकर उनके शिक्षा संबंधी

परिप्रेक्ष्य को। उन्हें यह आंतरिक उत्साह तथा आविष्कार की यात्रा लगती थी। चूँकि यह यात्रा साइक्स की शिक्षा संबंधी दृष्टि को भी उजागर करती है इसलिए इससे फिर एक बार गुजरना श्रेयस्कर ही होगा। साइक्स को ‘वर्तमान के महातम

¹⁰ हरिजन, 31 जुलाई 1937

¹¹ मार्था डार्ट, *मार्जरी साइक्स-क्वेकर गाँधीयन*, पृ. 22

¹² मार्था डार्ट, ‘मार्जरी साइक्स-1905-1995’ जहाँगीर पी.पटेल तथा मार्जरी साइक्स, *गाँधी-हिज गिफ्ट ऑफ़ द फ़्राइट* (गोआ 1987) पृ. 21

पुरुषों में से इन दो¹³ के विचारों में कई अंतर दिखाई दिए, पर साथ ही कई समानताएँ भी दिखाई दीं जो आमतौर पर जीवनीकारों और इतिहासकारों की नज़र में नहीं आतीं। साइक्स के अनुसार इन दोनों की पृष्ठभूमि, मिजाज और उन बिंदुओं में अंतर था जिन पर वे बल देते थे। किंतु इनकी मनोवृत्ति और उद्देश्य में साम्य था। रवींद्रनाथ कृष्ण थे—कलाकार, सौंदर्य में निमग्न, जबकि गाँधीजी राम थे—योद्धा, ज़रूरतमंदों की सहायता को उजागर करना फिर भी दोनों में एक-दूसरे का भी कोई तत्व था। साइक्स का तर्क था कि दोनों ही अपने-अपने तरीके से समान लक्ष्यों के लिए काम कर रहे थे—आत्मनिर्भरता की गरिमा और उत्तरदायित्वपूर्ण स्वतंत्रता का आचरण। दोनों का महास्वप्न एक-सा ही था—मुक्त, निर्भय तथा पुनरुज्जीवित मानवता। उपनिषदों की परंपरा में वे बाह्य उपलब्धियों को तब तक निरर्थक मानते थे जब तक कि वे आंतरिक स्वाधीनता और आनंद की उपलब्धि में मानव की, स्थानीय समुदायों की, और संपूर्ण समाज की सहायता न करें। वे प्रायः ईशोपनिषद् की एक ऋचा पर लौटा करते थे जिससे साइक्स भी बहुत प्रभावित थीं—यह संपूर्ण विश्व परिधान है ईश्वर का त्यागकर इसका भोग करो पुनः ग्रहण करो ईश्वर के वरदान के रूप में।¹⁴

गाँधी और रवींद्रनाथ भोग और त्याग में द्वंद्व का संबंध मानते थे। प्रकाश और अंधकार की भाँति वे विरोधी पूरक थे जो एक-दूसरे को अर्थ देते थे। इन

दोनों ही पुरुषों के जीवन का सिद्धांत वाक्य था 'त्यागकर भोग करो'¹⁵। यह संसार छोड़कर हिमालय की गुफ़ाओं में जा बसनेवाला त्याग नहीं था। इसके विपरीत इसका अर्थ था, 'मानव व्यापारों में एक अनासक्त और विलक्षण लिप्तता'¹⁶ और इस कारण ये दोनों अपने कार्य और कला के माध्यम से समाज में लिप्त रहे, संस्थाएँ और आंदोलन संचालित किए और इन्होंने संवाद, वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श आरंभ किए।

रवींद्रनाथ ठाकुर तथा गाँधीजी के शिक्षा संबंधी लक्ष्य और उनकी पद्धतियाँ इस विश्वदृष्टि से गहरे में अनुप्राणित थीं। वे बच्चों से प्यार करते थे और स्वयं 'चिर शिशु' थे। वे एक समग्र, समन्वित, बहुआयामी शिक्षा का स्वप्न देखते थे जिसमें हर बच्चे की वैयक्तिकता तथा प्रतिभा को पहचाना जाए और शिक्षा के एक मुक्त, आनंदमय वातावरण में उसे इस वैयक्तिकता तथा प्रतिभा को पूर्ण अभिव्यक्ति देने का अवसर मिले। उनका दृढ़ मत था कि शिक्षा को अत्याचार तथा अस्वाधीनता दूर करने में सहायक होना चाहिए। इसे हमें इतना समर्थ बनाना चाहिए कि हम सत्ता की केंद्रिकता तथा शोषण का प्रतिरोध कर सकें। इस काम को खेल की तरह लेना चाहिए और इसका ध्यान रचनात्मक कार्य पर केंद्रित होना चाहिए। इसे दैनिक जीवन के तत्वों तथा कार्यों का शिक्षण के संसाधनों के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। इस प्रकार कपास की खेती या बाउल संगीत शिक्षण-अधिगम की अनेक गतिविधियों के केंद्र बन

¹³ मार्था डार्ट, *मार्जरी साइक्स-क्वेकर गाँधीयन*, पृ. 23

¹⁴ जहाँगीर पी. पटेल तथा मार्जरी साइक्स, *गाँधी-हिज़ गिफ्ट ऑफ़ द फ़ाइट* (गोआ 1987) पृ. 62

¹⁵ वही, पृ. 63

¹⁶ वही, पृ. 64

सकते हैं—वह विज्ञान के क्षेत्र में हो, या भूगोल, इतिहास और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में, या कला, शिल्प या साहित्य के क्षेत्र में। शिक्षा को जहाँ वृहत्तर विश्व में प्रवेश की अनेक राहें खोलनी चाहिए, वहीं इसकी जड़ें स्थानीय आवश्यकताओं और संस्कृति में होनी चाहिए और कम-से-कम हाईस्कूल तक इसका माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। इस प्रकार साइक्स की दृष्टि में मूल तत्वों की दृष्टि से गाँव तथा शांति निकेतन उतने दूर नहीं थे जितना उन्हें समझा जाता है।

स्कूल और कॉलेज में सक्रिय अध्यापक के रूप में साइक्स इन विचारों को जीती रहीं। शांति निकेतन, सेवाग्राम तथा भारत के अन्य भी कई भिन्न-भिन्न इलाकों में इन्हें लागू करके वे इन्हें लगातार धार देती रहीं। अपने मार्गदर्शकों की ही तरह वे भी 'शिक्षा' तथा 'स्कूली पढ़ाई' में स्पष्ट अंतर करती थीं। वे इन दो शब्दों के आशय में इतना अंतर करती थीं मानो 'शिक्षा' का अर्थ दरअसल 'स्कूल से दूर जाना' किया जा सकता हो। साइक्स समझती हैं कि शिक्षा (education) का शाब्दिक अर्थ ही 'बाहर ले चलना' है।

मेरे मन में चित्र उभरता है कि कोई किसी बच्चे के हाथ को हौले से थामकर बच्चे के अपने प्राकृतिकमनोवेगों से सहयोग करता हुआ नये विकास और नए उद्यम को प्रोत्साहित करते हुए उसके साथ-साथ उसी की स्वाभाविक रफ्तार में चल रहा है। पर इसके विपरीत हम 'स्कूली पढ़ाई' शब्द का प्रयोग कुछ इस आशय

में करते हैं मानो किसी का ऐसे काम के लिए अनुकूलन किया जा रहा हो जो वह स्वभावतः नहीं करता—उदाहरण के लिए बैले नृत्य की कुछ भंगिमाएँ और गतियाँ। मेरा यह दावा नहीं है कि शिक्षा और स्कूली पढ़ाई परस्पर विरोधी हैं (मैं यह नहीं कह रही हूँ कि दोनों साथ नहीं चल सकते। पर यह मैं कह रही हूँ वे भिन्न हैं और हम लोगों को इस भिन्नता को पहचानना चाहिए।¹⁷

साइक्स का दृढ़ विश्वास था कि अध्यापकों की पहली चिंता शिक्षा होनी चाहिए, स्कूली पढ़ाई नहीं। उन्होंने अध्यापक की तुलना माली (किंडरगार्टन का अर्थ ही है बच्चों की बगिया) या नर्स (स्कूल नर्सरियाँ/पौधशालाएँ ही तो हैं)। से की है जिनकी जिम्मेदारी बच्चों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना है। जिस प्रकार कोई कुशल माली अपने पौधों की या समझदार नर्स अपने रोगियों की देखभाल करते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान अध्यापक को भी जानना चाहिए कि कब बच्चों को स्वयं उनके साथ छोड़ दिया जाए ताकि वे अपने विकास को जारी रख सकें, 'अपना मनभाता कर सकें' और अध्यापक पीछे हटकर केवल उन पर नज़र रखते रहें, 'उन्हें समझने के ख्याल से, दखल देने के लिए नहीं'।¹⁸ मगर जहाँ बच्चों को उनके काम में सहज सुविधा देने के लिए अध्यापकों को पीछे हट जाना चाहिए, वहीं उन्हें प्रश्न करने की आदत को सँवारने में विद्यार्थियों की मदद भी करनी चाहिए।

¹⁷ कृष्ण कुमार (संपा.) डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन इन इंडिया (नयी दिल्ली 1993), पृ. 24 में मार्जरी साइक्स का बीज भाषण।

¹⁸ वही, पृ. 25

मानवों में यह आदत तो प्रकृति से ही आती है। अध्यापकों को स्वयं में भी जिज्ञासा का उत्साह जगाना चाहिए। बच्चों को समस्याएँ उठाने और समाधान ढूँढ़ने में मज्जा आता है और अध्यापकों को यह बात उनसे सीखनी चाहिए।

शिक्षक के तौर पर हम क्या बच्चों के सहज प्रश्नों का स्वागत करते हैं? अपने जीवन और कृतित्व के माध्यम से मार्जरी साइक्स ने इस बात पर फिर से बल दिया कि शिक्षा का अर्थ है, 'जो चीजें हमारे सामान्य स्वीकृत पैटर्न में नहीं बैठती'¹⁹

उनके बारे में प्रश्न, समस्याएँ और संदेह उठाए जाएँ। शिक्षा बेजान तथ्यों का ढेर भर नहीं है; बल्कि हमें इसे 'चुनौती भरे प्रश्नों की शृंखला के प्रतिसाद'²⁰ के रूप में देखना चाहिए। अन्वेषण, बच्चों, लोगों, अनासक्त समाजलिप्तता, सौंदर्य आदि के प्रति उनके प्रेम ने और सबसे बढ़कर समानुभूति और मैत्री के उनके गुणों ने उन्हें देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों में स्थान दिलाया था। इसलिए शिक्षा संबंधी किसी भी चिंतन में उनका नाम हमेशा अनायास ही आ जाता है।

¹⁹ वही, पृ. 27

²⁰ वही, पृ. 27

पुस्तक समीक्षा

इतिहास की समझ—शिक्षक मार्गदर्शिका

संपादक: पवन कुमार गुप्ता द्वितीय संस्करण हिंदी: 2010

प्रकाशक: सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड मूल्य: 50 रुपये

डेवलपमेंट ऑफ हिमालय (सिद्ध), पृष्ठ संख्या: 74

मसूरी, उत्तराखण्ड आईएसबीएन: 978-81-87827-15-3

यह पुस्तक मुख्य रूप से शिक्षकों के लिए लिखी गई है। इस पुस्तक में शिक्षकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे स्थानीय परिवेश, आवश्यकताओं, छात्रों की उम्र एवं उनकी अभिरुचि के अनुरूप छात्र छात्राओं को इतिहास की समझ दें। यह मार्गदर्शिका शिक्षण को कक्षा की चहारदीवारी से बाहर स्थानीय परिवेश के माध्यम से और विभिन्न विषयों के समन्वित शिक्षण से बच्चों में मौलिक सोच विकसित करते हुए इतिहास संबंधी विविध धारणाओं की समझ विकसित करने का प्रयास करती है।

इस पुस्तक में भूमिका व परिशिष्ट के अतिरिक्त तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में इतिहास क्या है, इसका प्रयोजन क्या है और इतिहास को जीवन से कैसे जोड़ा जाए जैसे तीन मुख्य प्रश्नों को लेकर चर्चा की गई है। इस अध्याय में इतिहास का मुख्य प्रयोजन विगत की समीक्षा व भविष्य की योजना बनाने में मदद देने वाला बताया गया है। साथ ही इतिहास संबंधी महत्वपूर्ण अवधारणाओं, जैसे— बदलाव, कारण व प्रभाव, विभिन्न लोगों की भूमिकाओं और विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा की गई है। इतिहास को मुख्य रूप से बदलावों का अध्ययन करने वाले विषय के रूप में परिभाषित करते हुए वर्तमान के अतीत से घनिष्ठ रूप में संबंधित होने तथा अतीत में घटी विभिन्न घटनाओं के कारणों व प्रभावों की विवेचना कर वर्तमान को समझने की बात कही गई है। इसी अध्याय में बच्चों द्वारा अपने घर से विद्यालय तक की यात्रा के अलग-अलग विवरण लिखवाए जाने की गतिविधि के उदाहरण द्वारा इतिहास में किसी घटना व प्रक्रिया की सही समझ हेतु भिन्न-भिन्न विवरणों अथवा दृष्टिकोणों को ध्यान में रखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

द्वितीय अध्याय 'मेरे परिवार का इतिहास' में बच्चों द्वारा अपनी पीढ़ियों के वंशवृक्ष बनाने, उसके परिवार के किसी गाँव या शहर में बसने, परिवार के रोजगार, मकान आदि विषयों पर समय के साथ आए बदलावों की चर्चा की गयी है। इस तरह से बच्चे को उसके परिवार के इतिहास की झलक दिखाते हुए इतिहास की उसकी समझ को और पुख्ता करने का प्रयास किया गया है। इसी अध्याय में बच्चों द्वारा अपने घर से विद्यालय तक की यात्रा के अलग-अलग विवरण लिखवाए जाने की गतिविधि का एक उदाहरण सम्मिलित किया गया है जो यह दृष्टि देता है कि इतिहास में किसी घटना व प्रक्रिया की सही समझ हेतु भिन्न-भिन्न विवरणों अथवा दृष्टिकोणों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

तृतीय अध्याय 'मेरे गाँव का इतिहास' में भारत के राजनीतिक व सामाजिक ढाँचे की सामान्य चर्चा के बाद गाँव के ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन हेतु गाँव के नाम के पीछे कहानियाँ, गीतों के बारे में बुजुर्गों से जानने के साथ ही गाँव का नक्शा बनाने, गाँव में विभिन्न जातियों व धंधे में लगे लोगों के बसने में, गाँव की आबादी, गाँव की संस्कृति, बोली-भाषा, मान्यताओं व पारंपरिक ज्ञान, प्राकृतिक संपदाओं, पशु-पक्षियों, फसलों, गाँव की स्वायत्तता, न्याय-व्यवस्था, मेले-त्यौहार तथा अन्य आधुनिक सुविधाओं जैसे विषयों पर समय के साथ आये बदलावों व उनके प्रभावों पर ध्यान देते हुए अध्ययन की बात कही गयी है। इस अध्ययन में विभिन्न विषयों का समन्वित अध्ययन करते हुए गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को अपने गाँव के इतिहास की समझ देने का प्रयास किया गया है। परिशिष्ट में अंतिम अध्याय में कही गयी बातों को ही सार रूप में गतिविधियों के रूप में सुझाया गया है।

इस मार्गदर्शिका का मुख्य उद्देश्य बच्चों में इतिहास क्या है? इसका क्या प्रयोजन है? उनका हमारे आज के समाज के साथ क्या संबंध है और इतिहास को स्थानीय परिवेश से कैसे जोड़ा जाये इत्यादि मुद्दों पर चर्चा की गई है इन सभी मुद्दों पर कही गयी बातों में स्पष्टता देखने को नहीं मिलती। इतिहास अध्ययन का प्रयोजन महज विगत की समीक्षा व भविष्य की योजना बनाना नहीं कहा जा सकता है। इतिहास का प्रयोजन इससे कहीं व्यापक है। इतिहास अध्ययन में यहाँ बदलावों की ही चर्चा की गयी है जबकि इतिहास में बदलावों के साथ-साथ निरंतरता का भी उतना ही महत्त्व है जितना कि विवधता के साथ-साथ एकता व विपरीत के साथ-साथ समान तत्त्वों का। बदलाव से क्या तात्पर्य है इस पर भी प्रकाश नहीं डाला गया है। जब तक बच्चे बदलाव का मतलब नहीं समझेंगे तब तक उनमें बदलावों की समझ की अपेक्षा निरर्थक होगी। इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समय की

अवधारणा पर बात न करने की कमी खलती है। समय व कालक्रम की अवधारणा की समझ के बिना अन्य अवधारणाओं की समझ की अपेक्षा करना उचित नहीं है। इस बात से मैं सहमत हूँ कि बच्चों में विभिन्न विषयों के समन्वित शिक्षण पर जोर देने की आवश्यकता है लेकिन इतिहास की समझ देते समय परिवर्तन की समझ विकसित करने के लिए इतिहास को छोड़ शारीरिक रचना व वातावरण में आए बदलावों के उदाहरण दें और अपेक्षा करें कि दूसरे बच्चों में परिवर्तन की समझ विकसित हो जायेगी तो इस अपेक्षा को पुनःजाँचने की आवश्यकता है। समन्वित शिक्षण का उद्देश्य इतिहास संबंधी अवधारणाओं को अन्य विषयों की मदद से समझने का प्रयास होना चाहिए। ऐसा न हो कि अवधारणाओं को हम दूसरे विषयों से ही संबंधित करते जाएँ और इतिहास में उस अवधारणा को किन उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है उसकी ओर ध्यान ही न दें। यह समन्वित शिक्षण सही मायने में समन्वित शिक्षण नहीं होगा। बदलाव की प्रक्रिया के परोक्ष स्वरूप को समझाने हेतु दिया गया शारीरिक क्रियाओं का उदाहरण अपने में ठीक है। लेकिन इसके साथ ही यहाँ इतिहास के इस पक्ष से सम्बंधित उदाहरण दिया जाना चाहिए था। ऐसा करने पर बच्चों में इतिहास की समझ तो बनेगी ही साथ ही वे इसे अपने स्थानीय परिवेश से जोड़ पाएँगे। यही बात अन्य अवधारणाओं के विषय में भी कही जा सकती है। पुस्तक में कई बातों तथा वाक्यों की पुनरावृत्ति मिलती है जैसे वर्तमान स्थिति को समझने के लिए विगत की समीक्षा मदद करती है और भविष्य की योजना में मदद मिलती है ऐसे कई वाक्य मिलते हैं। इस बात से मेरी सहमति है कि इतिहास को सही रूप में समझने के लिए किसी भी घटना प्रक्रिया व अन्य मुद्दों पर अधिक से अधिक व्याख्याओं का अध्ययन करना चाहिए। इस पुस्तक में बच्चों द्वारा एक ही यात्रा के अलग-अलग विवरण लिखे जाने की गतिविधि के उदाहरण के आधार पर दो निष्कर्ष निकाले गए हैं पहला यह है कि सभी विवरण अलग होते हुए भी सच्चे हैं तथा दूसरा कि किसी भी घटना व प्रक्रिया को समझने के लिए एक विवरण पूर्ण नहीं है। अलग-अलग विवरण ही इतिहास में मायने नहीं रखते वरन कोई भी विवरण इतिहास की दृष्टि से तब महत्वपूर्ण होता है जब वह कुछ साक्ष्यों के आधार पर जाँचा-परखा गया हो। यहाँ अलग-अलग विवरणों की जाँच में साक्ष्यों की भूमिका पर प्रकाश नहीं डाला गया है। बच्चे के परिवार के इतिहास पर बात करते समय कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि वह अपने परिवार के इतिहास से जुड़ी विभिन्न जानकारियाँ इकट्ठा कैसे करेगा, क्या वह परिवार के फोटो अन्य दस्तावेजों या परिवार के बुजुर्गों से चर्चा द्वारा अथवा अन्य तरीकों से

इतिहास जानेगा, इस पर कुछ भी नहीं कहा गया है। गाँव के इतिहास को जानने में बुजुर्गों से चर्चा करने पर अवश्य जोर दिया गया है।

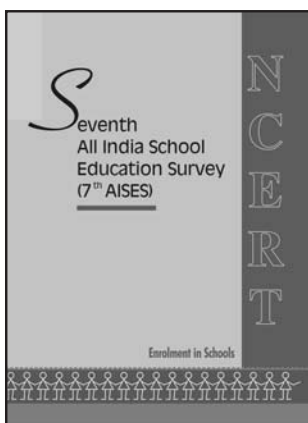
यह पुस्तक जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर लिखी गयी वे उद्देश्य तो ठीक हैं लेकिन इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शिक्षकों को दी गयी यह मार्गदर्शिका अपने उद्देश्यों में खरी उतरती नहीं दिखती है। पूरी पुस्तक से इतिहास और इससे संबंधित अवधारणाओं के मूल में जो बात है उसकी स्पष्ट समझ नहीं बनती है। बच्चे के परिवार व गाँव के इतिहास संबंधी अध्यायों के माध्यम से इतिहास को स्थानीय परिवेश से जोड़ने में यह पुस्तक कुछ हद तक ज़रूर सफल रही है।

सीमा एस. ओझा

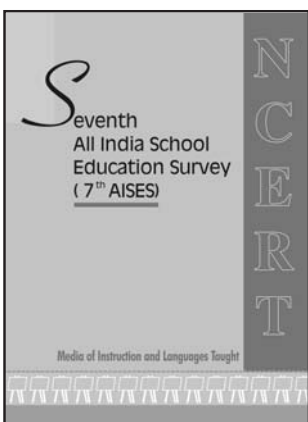
वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास

डी.ई.एस.एस.एच., एन.सी.ई.आर.टी.,

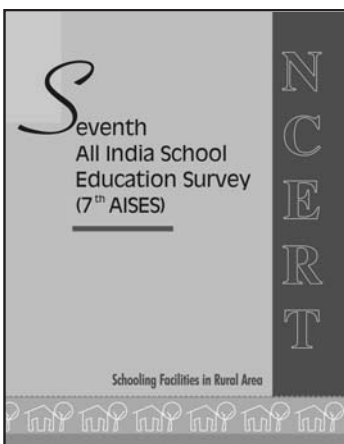
नई दिल्ली-16



Seventh All India School Education Survey (7th AISES)
Enrolment in Schools
Rs 250.00/386 pp



Seventh All India School Education Survey (7th AISES)
Media of Instruction and Languages Taught
Rs 135.00/200 pp



Seventh All India School Education Survey (7th AISES)
Schooling Facilities in Rural Area
Rs 165.00/238 pp

For further enquiries, please visit www.ncert.nic.in or contact the Business Managers at the addresses of the regional centres given on the copyright page.